गुरुकुल-पत्रिका

ज्येष्ठ २०४० वर्ष–३५ अंक–२

मई १९८३ पूर्णांक–३४४

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका

विषय सूची

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक–पत्रिका]

ज्येष्ठ, २०४० मई, १९८३ | वर्ष ३५ | अङ्क–२ पूर्णाङ्क–३४४

श्रुति सुधा

अग्नि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ साम० ३॥

अन्वयः—अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं विश्ववेदसं होतारं दूतम् अग्निं (वयम्) वृणीमहे ।

सं० अन्वयार्थ—इस यज्ञ के सुक्रतु, विश्ववेदा, होता, दूत, अग्निदेव का हम वरण करते है।

अन्वयार्थः—(अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं विश्ववेदसं होतारं दूतम् अग्निं वृणीमहे) इस संसार रूप यज्ञ के 1सुक्रतुम्–उत्तमकर्ता वा हमारे इस अध्यात्म-यज्ञ के उत्तम निष्पादनकर्ता, उत्तम प्रज्ञा के धनी, 2विश्ववेदसम्–सर्वविध धन-वैभवों के स्वामी, सर्वज्ञ, 3होतारम्–सब को कर्मानुसार सर्वविध पदार्थ प्रदान करने वाले वा सब को अपने समीप बुलाने वाले; 4दूतम्–दूतवत् निर्बाध रूप से सर्वत्र गए हुए होकर सब को दिव्य सन्देश देने वाले और उस का पालन न करने पर यथोचित उपताप–दण्ड देने वाले; अग्निम्–ज्ञानप्रकाश से युक्त, सफल और सुफल नेतृत्व करने वाले, अपने ज्ञान प्रकाश के दान से हृदय को देदीप्यमान–प्रकाशमान करने वाले प्रभु का हम वरण करते है।

हम अपने अभ्युदय और निश्रेयस् के लिए उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न प्रभु का वरण करते है।

१—सुक्रतुम्–सुकर्त्तारम्। यद्वा सु-शोभनो (क्रतुः वा कर्म वा) यस्य सः सुक्रतुस्तं सुक्रतुम्। (क्रतुः कर्म च प्रज्ञा च-निघन्टु ३.६,२.१)

२—विश्ववेदसम्–i विश्वं वेदो धनं यस्य स विश्ववेदाः, तं विश्ववेदसम्। ii विश्वं वेत्ति-जानाति-इति विश्ववेदास्तम् सर्वज्ञम्।

३—होता-दाता, आह्वाता। देने वाला और बुलाने वाला–अपने समीप बुलाने वाला।

४—दूतम्–"दु-द्रु गतौ" (भ्वादि०) यद्वा "टुदु उपतापे"। दवति गच्छति दुनोत्युपतपति वाऽसौ दूतः।

महापुरुषों के वचन

कामः—

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।। गीता ३.३८

जिस प्रकार धुएँ से अग्नि और मैल से दर्पण ढका जाता है तथा जिस प्रकार जेर से गर्भ ढका रहता है, वैसे ही उस काम के द्वारा यह ज्ञान ढका रहता है ।

दिवा पश्यति नोल्लूको रात्रौ काको न पश्यति ।
अपूर्वः कोऽपि कामान्धो दिवा नक्तं न पश्यति ।।

उल्लू को दिन मे नही दीखता और कौए को रात्रि में किन्तु काम का अन्धा ऐसा होता है कि जिसको न रात मे दीखता है न दिन मे ।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।। मनुस्मृति ।।

विषयों के उपभोग से 'काम' कभी शान्त नही होता, वरन् वह तो घृत से अग्नि की भाँति और भी अधिक बढ़ जाता है ।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।। गीता ३.३९ ।।

हे अर्जुन ! इस अग्नि के समान कभी न पूर्ण होने वाले ज्ञानियो के नित्य वैरी इस काम के द्वारा मनुष्य का ज्ञान आवृत अर्थात्–ढका हुआ रहता है ।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनाम् ।। गीता ३.४० ।।

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि-ये सब इसके वासस्थान कहे जाते है । यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियो के द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित करके जीवात्मा को मोहित करता है ।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजह्योनं ज्ञान-विज्ञान नाशनम् ।। गीता ३.४१ ।।

इसलिए हे अर्जुन ! तू पहले इन इन्द्रियों को वश मे करके इस ज्ञान और विज्ञान का विनाश करने वाले महापापी इस काम को निश्चय ही मार डाल ।

दयानन्द-वेदभाष्य : एक अध्ययन

मनुदेव 'बन्धु'

दयानन्द का वेदभाष्य यास्क की मान्यताओं को स्वीकार करता है। देव-दृष्टि को समझाते हुए यास्क ने अपनी त्रिविध देवपरिकल्पना मे तीन स्तरों की क्रमशः आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक रूप में जो कल्पना की है; उसे अग्नि,पर्जन्य आदित्यादि के भेद से समझाते हुए वे अन्त में वैश्वानर के रूप में एक ही परमदेव स्वीकार करते है। अपने युग के अज्ञानान्धकार को देखते हुए ऋषि दयानन्द ने आध्यात्मिक दृष्टि से एक ही महादेव परमात्मा को स्वीकार किया और आध्यात्मिक अर्थ मे अग्नि, इन्द्र आदि का अर्थ व्याकरण और निरुक्त के आधार पर परमात्मा की ही विविध शक्तियों के उद्घोषक के रूप में स्वीकार किया। अतः एकेश्वरवाद या महादेववाद को ही ऋषि की निष्ठा का आधारभूत सत्य कहा जा सकता है। निस्सन्देह यास्क की भाति व्याकरण के परम पण्डित होकर ही दयानन्द निरुक्त या निर्वचन पद्धति का आश्रय व्याकरण के प्रमुख अङ्ग रूप मे मानकर ही बढ रहे थे।

यहाँ प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि दयानन्द की वेदभाष्य मे प्रवृत्ति क्यों हुई ? जहाँ मध्ययुगीन ईश्वर भाष्य से दयानन्द विचलित थे और सच्चे ईश्वर के स्वरूप को जानने की उत्कण्ठा से व्यग्र थे, वहाँ उनके गुरु विरजानन्द अपनी प्रज्ञा से इस तथ्य को पाकर अत्यन्त खिन्न थे कि महान् वैयाकरण माधव एवं उनके परम वेदविद् भ्राता सायण, दोनो ने ही जिस वेदभाष्य को वेदो के पुनरुद्धार की भावना से पूर्ण किया, उसमें न तो व्याकरण की पूर्ण रक्षा हुई और न ही यास्क की आर्ष-पद्धति को पूर्णतः अपनाया गया। अतः उन्होने ऋषि को जो दृष्टि दी, वह जहाँ ऋषि की मूल जिज्ञासा को शान्त करने वाली थी, वहां बुद्धयुग से लेकर मध्ययुग तक की परिव्याप्त ईश्वर सम्बन्धी अवैदिक एवं अनार्ष धारणाओं पर आश्रित सायण, माधव, महीधर और उव्वट आदि की त्रुटियों को भी उद्घाटित करने वाली थी। सम्भवतः इसका कारण इन विद्वानों का समसामयिक परिस्थितियो से प्रभावित अनार्ष एवं परवर्ती ग्रन्थों पर आश्रित रहना था तथा साथ ही साथ स्वानुभूति एवं धर्म साक्षात्कार का अभाव था। अतः वेदोद्धार की चिन्ता होने पर भी किसी मूल निष्ठा एवं व्यग्रता से परिचालित न होने के कारण वे अपने कर्त्तव्य की इतिश्री केवल व्याकरण के आश्रय पर ही मान बैठे।

सम्भवतः दयानन्द का आक्रोश उनके प्रति इतना न होता और वे भी अपना वेदभाष्य बिना किसी सिद्धान्त के कर देते, यदि उन्हें इससे होने वाला एक अन्य कुपरिणाम बहुत भयंकर रूप में व्यथित न कर रहा होता। वे यह देख रहे थे कि सायणादि ने व्याकरण मात्र को दृष्टि में रखकर अग्नि, सूर्यादि से सम्बन्धित मन्त्रो का जिस प्रकार अर्थ किया, उसको ही पढ़कर जो पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर आदि

वेदभाष्य में प्रवृत्त हो रहे थे, वे अपने अधकचरे व्याकरण ज्ञान के आधार पर उसमें भी और भौतिकवादी संशोधन कर रहे थे तथा प्रतीकात्मक और वेदमन्त्रों की लाक्षणिकता से आपूर्ण उक्तियों को भी सामान्य बोलचाल की बातें मात्र सिद्ध कर रहे थे। इसी का परिणाम यह है कि उन्होंने सायण आदि की मूल भावना को बिना समझे वेदों को बहुदेववादी वैदिक ऋषियों को जड़देव उपासक एवं वैदिक उपासना पद्धति को परवर्ती दूषित कर्मकाण्ड पर आधारित मात्र सिद्ध कर दिया है। इस प्रकार उन्होंने एक नया काम यह किया है कि जहाँ सायण आदि ने अपनी बुद्धि से वैज्ञानिक एवं आधुनिक दृष्टि से चमत्कारपूर्ण रहस्यों को सामान्य तथ्यों की भाँति उद्घोषित किया था वहां उन्हें इन पाश्चात्य विद्वानों ने मूर्खताजन्य कल्पना-मात्र घोषित करके सर्वथा नये, अज्ञानपूर्ण एवं अवनतिपरक अर्थों की अभिव्यक्ति की। परिणामतः जहां एक ओर वे भारत के अतीत को मानवता की प्रथम सर्वोच्च निधि घोषित कर रहे थे, वहां दूसरी ओर उन्होंने वेदों को सचमुच ही "गडरियों के गीत" जैसी वस्तु घोषित कर दिया। इस पर भी विडम्बना यह है कि वे सायण आदि को ही अपना मूल स्रोत एवं प्रकाशस्रोत उद्घोषित करते रहे। दयानन्द इस बात से व्यथित थे।

एक ओर जहां वे सायण के व्याकरण ज्ञान के अत्यधिक प्रशंसक थे, दूसरी ओर वहा उन्हे यह दुःख था कि सायण भी उनकी भाँति यास्कीय एकात्मवाद या महादेववाद से क्यो व्यथित नहो थे। उन्हें यह भी दुःख था कि सायण विज्ञान के केवल उन्ही तथ्यों को उद्घाटित कर पाये जो उनके युग तक किसी न किसी भाँति सत्य और मान्यता को प्राप्त हो सकते थे। उन्होने युग से ऊपर उठकर वेद में वर्णित तथ्यों को वैदिक तथ्यों की भाँति यथावत् रूप में क्यों प्रकट नही किया। ये ही सब कारण थे जिनसे व्यथित होकर दयानन्द वेदभाष्य में प्रवृत्त हुए।

ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका में वे अपनी वेदभाष्य पद्धति का आधार इस श्लोक मे वर्णित करते है—

> आर्याणां मुन्यृषीणां या व्याख्यारीतिः सनातनी।
> तां समाश्रित्य मन्त्रार्था विधास्यन्ते नु नान्यथा॥

उनके वेद भाष्य को पढ़ते हुए यदि उक्त बातों को हम ध्यान मे रखें तब यह स्पष्ट होगा कि व्याकरण, इतिहास, कर्मकाण्ड आदि की दृष्टि से जो अशुद्धियाँ समझी जाती हैं, वास्तव में वे ही उनकी भाष्य शैली की पृथक्ता एवं एकात्मकता की प्रतीति है। उनका वेदभाष्य केवल मन्त्रों के शाब्दिक अर्थ तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह एक समग्र भावना से जन्म लेने वाला तथ्य है। परम व्याकरणवित् होने के कारण ऋषि स्फोट में विश्वास रखते थे और मन्त्रार्थ का वह स्फोट उनके हृदय में जिस भी रूप में हुआ, व्याकरण निरुक्त आदि की सहायता से तत्रस्थ शब्दों का शाब्दिक या पदगत अर्थ भी

उन्होने उसी को व्यक्त करने के लिए उससे सम्बन्ध रूप में कर दिया। यही कारण है कि हम कारक आदि के परम्परागत अर्थों को वहाँ न पाकर एक समग्र तथ्य के अङ्गभूत रूप में पाते है।

भाष्य शैली के मूलाधार ग्रन्थ ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका, ऋग्वेद-भाष्य, यजुर्वेद-भाष्य, सत्यार्थ-प्रकाश, संस्कारविधि आदि हैं। भाष्य की मूल भावना, एकेश्वरवाद और त्रैतवाद में विश्वास, परब्रह्म के निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी होने में निष्ठा और जीव तथा प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता एवं शक्तियों में आस्था है।

भाष्यशैली— दयानन्द ने अपने वेदभाष्य मे एक ऐसा निश्चित क्रम अपनाया है कि वे स्वयं भी किसी प्रकार की व्याकरणात्मक या अन्य उपेक्षा अपने वेद भाष्य में करने को तैयार नही थे।

१. सर्वप्रथम मन्त्र का मुख्य विषय देते है और संक्षेप में समझाते हैं कि इस मन्त्र में इस विषय का प्रतिपादन है।

२. द्वितीय स्थान वे 'पदच्छेद" को देते है जो कि पुरातन पद्धति के वेदपाठ का ही रूपान्तर है। इसमें हम यदि कहीं उपलभ्य हो तो उनकी त्रुटि को या पूर्व परम्परा से विभेद को पहिचानने में समर्थ हो सकते हैं।

३. तृतीय स्थान वे "अन्वय" को देते है। वास्तव में अन्वय ही मन्त्र की मूलस्थ वृत्ति को निश्चत करने वाला है। व्याकरणात्मक रचना एवं वाक्य-विन्यास की परीक्षा का अवसर यहां पर भी उपस्थित होता है।

४. दयानन्द की भाष्य शैली का चतुर्थ और अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भाग है "पदार्थ"। वास्तव में किसी भी भाष्यकार या व्याख्याकार को पदार्थ के प्रसङ्ग मे ही अपनी प्रतिभा या मूलभावना दिखाने का अवसर मिलता है। सायण और दयानन्द दोनों ही ऐसा करते हुए व्याकरण एवं निरुक्त या निर्वचन पद्धति का भरपूर आश्रय लेते है। अन्तर केवल इतना है कि सायण जहाँ सामान्य लोक-भाषा जैसे अर्थों से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, वहां दयानन्द वेदों की विशिष्ट भूमि को ध्यान में रखते हुए और पूर्वकथित सिद्धान्तों के आधार पर उन्ही सामान्य शब्दों को विशेष वैदिक दृष्टि से देखते है। दयानन्द यह भी जानते है कि वेद की प्राचीनतम भाषा की व्याख्या पाणिनि और उसके परवर्ती वैयाकरणों द्वारा किये गये धातुपाठो और धात्वर्थों एवं प्रकृति-प्रत्यय-विभाग मात्र के आधार पर नहीं की जा सकती। स्वयं सायण ने भी कुछ विशिष्ट स्थलों पर इस तथ्य को स्वीकार किया है। परन्तु यास्क तो स्वयं पाणिनि से बहुत पूर्व हुए थे असाक्षात्कृतधर्मा ऋषियों के समकालीन होने पर भी वे स्वयं वेद और धर्म का साक्षात्कार कर चुके थे। इसलिये उनके

द्वारा दिये गये धात्वर्थ, व्याकरण नियम एव प्रकृति-प्रत्यय विभाग उनकी स्वतन्त्र चेतना एव तीक्ष्ण प्रतिभा के द्योतक है। उन्होंने प्रातिशाख्यो की व्याख्या पद्धति एव ब्राह्मण ग्रन्थो की व्याख्या पद्धति को भी हृदयगम किया था। दयानन्द ने यास्क सहित उक्त सभी पद्धतियो को स्वीकार किया था और जहा-जहाँ भी नवीन धातुओ, धात्वर्थों एव प्रकृति-प्रत्यय आदि की कल्पना की, वह सब उनके इस पूर्वोक्त अध्ययन पर ही आधारित था। अन्तर केवल इतना ही है कि दयानन्द जिस युग मे जिस विद्वद्वर्ग के लिये तथा जिस ज्ञान सामान्य को दृष्टि मे रखकर लिख रहे थे, उन सब के लिए यास्क आदि से प्राप्त तथा युगचिन्तन से प्रबुद्ध अपनी भावना को व्यक्त करना उनके लिए सर्वप्रमुख बन चुका था। इसलिए वे इस पदार्थ नामक शीर्षक के अन्तर्गत केवल पदविच्छेद एव अर्थविच्छेद करके ही सन्तुष्ट नही हो जाते, अपितु भाष्य की पद्धति से उसके पीछे छिपी मूल भावना को भी स्पष्ट करते हैं। इसी कारण कही-कही उन्हे अन्वय मे पूर्वोल्लिखित पदक्रम से भिन्न क्रम को अपनाना पडता है तथा कारक आदि के निश्चित विभक्त्यर्थ आदि की परवाह न करके भी प्रकरणानुकूल अर्थ को स्पष्ट करना पडता है। वे मन्त्रार्थ या उसके भाष्य को इकाई मानकर चलते है। इसी कारण 'पदार्थ" को महत्त्व न देकर उसे केवल मुख्यार्थ का अङ्गभूत अश ही मानते है तथा उसी दृष्टि से उसका स्थान और क्रम निश्चित करते है। उनका सत्यभाष्य या वेदार्थ इन्ही पदार्थो मे स्पष्ट हुआ है।

५ दयानन्द को भाष्य पद्धति का पञ्चम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश भावार्थ है। पदार्थ करते हुए वे व्याकरण, निरुक्त आदि जिन सीमाओ मे चलने को बाध्य होते है, भावार्थ मे वे उन सबका तिलाजलि दे देते है। उस मन्त्र विशेष को पढने या मनन करने पर जो भी दृष्टि, भावना या प्रेरणा उनके सामने जागती है उसे ही वे किसी पद-पदार्थ के बन्धन मे पडे बिना भावार्थ के रूप मे प्रस्तुत कर देते है। सच तो यह है कि इस भावार्थ को उस मन्त्र विशेष के सम्बन्ध मे दयानन्द की अपनी टिप्पणी कहा जा सकता है। भाष्य यदि उक्त, अनुक्त और दुरुक्तादि सभी बातो का पर्यालोचन करते हुए बढता है, तब कहना होगा कि दयानन्द भावार्थ के माध्यम से उसी उद्देश्य की पूर्ति मे प्रवृत्त होते है। उस दृष्टि मे यदि पदार्थ उनके ज्ञान का सूचक है तो भावार्थ उनके मनन और चिन्तन का। दूसरे शब्दो मे उनके वेद-भाष्य का अशभूत यह भावार्थ ही उन्हे सच्चा ऋषि सिद्ध करता है—"ऋषयो मन्त्रद्रष्टार"। क्योकि उनकी सच्ची मन्त्रदृष्टि यही पर पूर्णतया व्यक्त हुई है।

इसी प्रसग मे हमारा यह कहना सार्थक होगा कि दयानन्द रूढ़िवादिता के पुजारी नही हैं क्योकि दयानन्द ने एक ही मन्त्र का विविध ग्रन्थो मे विभिन्न प्रकार से भाष्य किया है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि वेद मे क्वापि पुनरुक्ति दोष नहीं है।

अन्त में यह भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि दयानन्द केवल ईश्वरपरक अर्थ करने को भी सच्ची वेदभावना नहीं मानते थे। वे स्पष्टतः वैदिक विषयों अपि; वा देवताओं के तीन स्वरूप मानते हैं (१) आधिभौतिक, (२) आधिदैविक, (३) आध्यात्मिक। अतः वे यह सम्भावना मानकर चल रहे थे और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और सत्यार्थप्रकाश मे उन्होंने इस बात की बार-बार घोषणा की है कि अनेकों एक ही मन्त्र का अर्थ और उसकी व्याख्या अनेक दृष्टियो से या उक्त तीनों दृष्टियों से की जा सकती है। इनमें से एक दृष्टि भी अनेक भेदो से भिन्न हो सकती है। यथा—आध्यात्मिक दृष्टि से व्याख्या करने पर एक ही मन्त्र परमात्मा और जीवात्मा के प्रसंग में भिन्न-भिन्न अर्थों में व्याख्यात किया जा सकता है। भौतिक दृष्टि से विवेचन करने पर अग्नि आदि की व्याख्या अनेक रूपों में की जा सकती है। यही बात अग्नि आदि के आधिदैविक अर्थों के सम्बन्ध में भी है। प्रथम दृष्टि से अग्नि और इन्द्र आदि परब्रह्म और जीवात्मा आदि के लिए यथाप्रसंग स्थित रहते हैं तो दूसरी ओर आधि-दैविक रूप मे अतिथि, संन्यासी, पर्जन्य, रतनयित्नु आदि के रूप में भी इन सब दृष्टियों और सम्भाव-नाओं को सामने रखकर तथा यथासम्भव उत्तमोत्तम ज्ञान की उपलब्धि करके ही वेदार्थ में प्रवृत्त होना चाहिए। वे वेद को परमेश्वरीय और नित्य ज्ञान मानते है। उसे सभी प्रकार के सम्भव ज्ञान की अपेक्षा उच्चतर एवं पूर्णतर ज्ञान का भण्डार मानते है। इसलिये वास्तविक भाष्य आरम्भ करने से पूर्व उन्होंने एक-एक मन्त्र के अनेक प्रकार के अर्थों से युक्त भाष्य के कुछ नमूने छापकर विद्वद्वर्ग में वितरित किये थे। परन्तु साथ ही यह भी घोषित किया था कि सभी वेदमंत्रों का इस प्रकार भाष्य करने में अत्यन्त श्रम, समय, धनादि की आवश्यकता होगी जो कि उनके लिये जुटा पाना असम्भव सा था। इसलिए प्रमुखतः आध्यात्मिक दृष्टि को लक्ष्य में रखकर और जहाँ अनिवार्य दिखाई दे, वहां अन्य दृष्टियों से वेदार्थ और वेदभाष्य करने मे हो वे प्रवृत्त हुए। परन्तु भाष्यभूमिका में यह सुस्पष्ट उल्लेख किया है कि इतने से यह न समझ लेना चाहिए कि वेद का भाष्य उनके अर्थ के अतिरिक्त और कुछ हो ही नही सकता या किया ही नही जा सकता। दयानन्द अपने भाष्य के माध्यम से तो एक दिशा निर्देश मात्र दे रहे थे ताकि भारत और पश्चिम के विद्वान् सही देख सकें और इस गुरुतर कार्य को अपने सामर्थ्य के अनुसार वहन कर सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थः—

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका — दयानन्द

ऋग्वेदभाष्यभूमिका — सायण

ऋग्वेदभाष्य — दयानन्द

यजुर्वेदभाष्य — दयानन्द

सत्यार्थप्रकाश — दयानन्द

ऋग्वेदभाष्य — सायण

गुरुकुल के तीन स्नातक रत्न

पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार पालिरत्न

ले० प्रो. भवानीलाल भारतीय

अध्यक्ष : दयानन्द शोधपीठ चंडीगढ़

निरुक्त के भाष्यकार तथा प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार का जन्म १६ सितम्बर १८६१ को जालंधर में हुआ। इनके पिता का नाम श्री शालिग्राम था। सं० १९७० वि० (१९१४) में आपने गुरुकुल कांगड़ी के विद्यालंकार की परीक्षा उत्तीर्ण का स्नातक उपाधि प्राप्त की। आप वर्षों तक गुरुकुल कांगड़ी में वेद के उपाध्याय रहे। देहरादून में भास्कर प्रेस की स्थापना की तथा वहाँ से ही इनके अनेक ग्रन्थ मुद्रित हुए। जुलाई १९६५ ई० में आपका निधन हुआ।

पं० चन्द्रमणि कृत ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है:—

१. निरुक्त भाष्य (वेदार्थ दीपक) सरल हिन्दी में निरुक्त की सारगर्भित व्याख्या २ भागों में १९८० वि० (१९२६ ई०) में प्रकाशित हुई। निरुक्त के इस भाष्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मंत्रार्थ करते समय स्वामी दयानाद प्रतिपादित वेदर्थ शैली का पूरा ध्यान रखा गया है। इसका नवीन संस्करण हरयाणा साहित्य संस्थान गुरुकुल झज्जर ने प्रकाशित किया।

२. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (धारावाही अनुवाद) तीन खण्डो में समप्त यह ग्रन्थ प्रतिभा प्रकाशन देहरादून से १९५१ ई० में प्रकाशित हुआ।

३. आर्ष मनुस्मृति–प्रक्षिप्त श्लोको को पृथक् कर मनुस्मृति की सरल टीका

४. कल्याण पथ गीता टीका

५. महर्षि पतञ्जलि और तत्कालीन भारत-स्वधर्म प्रचारक प्रेस दिल्ली से १९१४ ई० में प्रकाशित

६. स्वामी दयानन्द का वैदिक स्वराज्य–गुरुकुल कांगड़ी से १९७८ ई० में प्रकाशित

७. स्वामी दयानन्द के सत्य अहिंसा के प्रयोग–भास्कर प्रेस देहरादून से १९४६ ई० में प्रकाशित

८. धम्मपद–टीका व वेदार्थ करने की विधि–गुरुकुल कांगड़ी से १९७३ में प्रकाशित

९. स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य की विषयानुक्रमणिका–गुरुकुल कांगड़ी से १९१८ में प्रकाशित

—✲—

चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसा तीर्थ

राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रथम बार चारों वेदों का सम्पूर्ण भाष्य लिखने वाले पं० जयदेव शर्मा का जन्म १८६२ ई० में अम्बाला जिले के एक ग्राम में श्री मुन्शीराम के यहां हुआ। उनका अध्ययन गुरुकुल विश्वविद्यालय कॉगड़ी में हुआ जहां आचार्य प्रवर स्वामी श्रद्धानन्द जी के चरणों में बैठकर उन्होने विद्या ग्रहण की। विद्यालंकार की उपाधि (१९७० वि.) में ग्रहण करने के अनन्तर पं० जयदेव शर्मा ने जोबनेर, गुरुकुल कांगड़ी तथा गुरुकुल मुलतान (१९१५ ई०) में अध्यापक कार्य किया। कुछ समय तक वे ज्ञान मण्डल काशी तथा कलकत्ता में भी रहे। स्वामी श्रद्धानन्द की प्रेरणा और आदेश से शर्मा जी ने मीमांसा शास्त्र का विशेष अध्ययन कलकत्ते रहकर किया तथा वहां से मीमांसातीर्थ की उपाधि ग्रहण की।

आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर के संस्थापक एवं संचालक श्री मथुरा प्रसाद शिवहरे की प्रेरणा से शर्मा जी ने चारों वेदों का हिन्दी भाषा में भाष्य लिखने का सकल्प किया। मई १९२५ में यह कार्य आरम्भ हुआ और ११ वर्ष के निरतर परिश्रम के पश्चात् १९३६ में चतुर्वेद भाष्य समाप्त हुआ। चारो वेदों पर लिखा गया यह हिन्दी भाष्य न केवल हिन्दी में अपितु किसी भी भारतीय भाषा में लिखा गया प्रथम सम्पूर्ण भाष्य है। भाष्यकार स्वामी दयानन्द की वेदार्थ प्रक्रिया का ही अनुसरण किया है। भाष्यारम्भ मे विद्वान् भाष्यकार ने महत्त्वपूर्ण भूमिकायें लिखकर चारो वेद संहिताओं का सविस्तार परिचय दिया है। अब तक इन भाष्यों के अनेक संस्करण हो चुके हैं। १९४६ से १९६० ई० तक शर्मा जी वनस्थली विद्यापीठ मे संस्कृत के प्राध्यापक रहे। माघ शुक्ला १३. सं० २०१८ वि. दि० २९जनवरी १९६१ रविवार के दिन पं० जयदेव शर्मा का निधन हुआ।

पं० जयदेव विद्यालंकार रचित ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है:—

ऋग्वेद भाषा भाष्य (६ भाग)
यजुर्वेद भाषा भाष्य (२ भाग)
सामवेद भाषा भाष्य (१ भाग)
अथर्ववेद भाषा भाष्य (४ भाग)

माधवानुक्रमणी – ऋग्वेद के भाष्यकार वेंकटमाधव ने ऋग्वेद के आठों अष्टकों के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में स्वर,आख्यात, निपात, छन्द आदि आठ विषयों की विवेचना की है। पं० जयदेव शर्मा ने इस ग्रन्थ का भाषानुवाद किया।

ईशोपनिषद् भाषा भाष्य–जयनारायण रामचन्द्र सेठ कलकत्ता द्वारा १९८० वि. में प्रकाशित।

यमयमी सूक्त व्याख्या धनुर्वेद, का इतिहास, अथर्ववेद और जादू टोना आर्य साहित्य मण्डल,।

अजमेर से प्रकाशित ।

क्या वेद में इतिहास है ? श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के वेद में इतिहास विषयक विचार का सप्रमाण खण्डन । आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर से २०१० वि. में प्रकाशित ।

पुराणमत पर्यालोचन–आचार्य रामदेव जी के सहलेखन में लिखा गया पुराणालोचन विषयक ग्रन्थ । गुरुकुल कांगड़ी से १९७६ वि. (१९१९) में प्रकाशित ।

हैदराबाद सत्याग्रह का रक्त रञ्जित इतिहास – सूर्यदेव शर्मा के सहलेखन में । आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर से १९४७ में प्रकाशित ।

आर्य समाज के उज्जवल रत्न-आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर से प्रकाशित ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के यजुर्वेद भाष्य तथा पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के यजुर्वेद भाष्य विवरण की तुलना – अध्याय १ से १० पर्यन्त । परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा १९५० में प्रकाशित

विधवाविवाह मीमांसा – पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के बंगला ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद ।

—✲—

पं० जनमेजय विद्यालंकार

संस्कृत कवि, विद्वान् और सुयोग्य लेखक जनमेजय विद्यालंकार का जन्म ३ मार्च १९०३ को कानपुर में हुआ । सं० १९७८ वि. (१९२२ ई०) में आपने गुरुकुल कांगड़ी से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण कर विद्यालंकार की उपाधि प्राप्त की । पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री तथा आगरा से संस्कृत विषय लेकर एम. ए. परीक्षा उत्तीर्ण की . कई वर्षों तक लाहौर में अध्यापन कार्य किया । पश्चात् डी. ए. वी. कालेज कानपुर मे संस्कृत के प्रवक्ता रहे । अब कार्य निवृत्त होकर स्वाध्याय में रत रहते हैं ।

पं० जनमेजय लिखित पुस्तको का विवरण इस प्रकार है—

१—सामाजिक क्रान्ति ।

२—भोजन तथा छूतछात १९२५ ई० में प्रकाशित ।

अभिनव काव्यम्-संस्कृत पद्य तथा गद्य की कतिपय ललित रचनाओं का संग्रहात्मक यह ग्रन्थ १९५८ ई० में प्रकाशित हुआ । उत्तर प्रदेश सरकार ने इसे पुरस्कृत भी किया है ।

वेदों में मानववाद

(Humanism in Vedas)

लेखक—डा० दिलीप वेदालंकार—

उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी में मानव के समष्टिगत कल्याण को लेकर पश्चिम में 'मानव-वाद' के नाम से एक चिन्तनधारा व जीवन-दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। सैकड़ों दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों और राजनीतिज्ञों ने मानव-गौरव की स्थापना कर, उसे सब प्रकार के अन्धविश्वासों और पूर्वाग्रहों से मुक्त कर कल्याण के पथ पर प्रवृत्त होने का सन्देश दिया। इसके लिए उन्होंने ज्ञान और नैतिकता पर बल दिया। किसी को ईश्वर और अध्यात्म की आवश्यकता प्रतीत हुई तो अधिकांश ने इनके बिना ही मानव-कल्याण, विश्व-बन्धुत्व और विश्व-शान्ति की कल्पना की। किन्तु दोनों विचारधाराओं के चिन्तक मानव-जीवन को एक अविच्छिन्न इकाई के रूप में प्रस्तुत कर उसके सर्वांगीण विकास और मानव-मानव में समता की भावना उत्पन्न करने के लिए कोई सुनिश्चित एवं सुनियोजित दर्शन, समाज-व्यवस्था, शासन-व्यवस्था और आचारशास्त्र (Ethics) नहीं दे सके।

हमारा विश्वास है कि वैदिक साहित्य में मानव के व्यष्टि और समष्टि-गत सर्वविध विकास का सही मार्ग प्रतिपादित है। वह मार्ग सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक है और मानव-मात्र के लिए समान रूप से सेवनीय है।

उसमें लिंग-भेद, जाति-भेद, वर्ग-संघर्ष और हिंसा का कोई स्थान नहीं। वैदिक धर्म कोरा आदर्शवाद नहीं है प्रत्युत् मानव-हित एवं विश्व-शान्ति के लिए एक सुनिश्चित दर्शन, आचारशास्त्र, समाज-व्यवस्था तथा शासन-व्यवस्था प्रस्तुत करता है। उसमें मानवोपयोगी विज्ञान, कला-कौशल और उद्योग आदि का भी सन्निवेश है।

इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम 'वैदिक दर्शन एवं मानववाद' नामक अध्याय में यह प्रतिपादित किया है कि वैदिक दर्शन सर्वान्तर्यामी परमात्मा को सब प्राणियों का पिता-माता मानता है एवं इस प्रकार भ्रातृभाव एवं विश्व-बन्धुत्व को सबल आधार प्रदान करता है। प्राणिमात्र में एक ही आत्मतत्त्व की समदृष्टि उत्पन्न करता है। ब्रह्म की तरह जीव और प्रकृति की भी वास्तविक सत्ता मान कर मानव को सांसारिक अभ्युदय से विमुख नहीं करता। कर्म सिद्धान्त में आस्था उत्पन्न कर मनुष्य को नैतिक कार्यों में प्रवृत्त करता है तथा हिंसा आदि से दूर रखता है। वैदिक दर्शन तर्क को भी ऋषि मानता है और रूढ़ियों, आडम्बरों और अन्ध विश्वासों में न फंस कर मानव-शक्ति द्वारा अज्ञान का निवारण

कर सत्य-मार्ग पर अग्रसर करता है। वैदिक संहिताओं में परमात्मा, जीवात्मा तथा प्रकृति की सिद्धि युक्तियों के आधार पर की गयी है, यद्यपि ब्रह्म-साक्षात्कार का मार्ग एकमात्र अन्तःप्रत्यक्ष (intntion) ही बताया है।

तदनन्तर 'वैदिक धर्म और मानववाद' नामक अध्याय में बताया गया है कि किस प्रकार यज्ञ की मूल भावना त्याग एवं आत्मा सम्बन्धी परिष्कार करते है। यम-नियम वैदिक धर्म के सम्बल है; इनमें जहाँ 'यम' समष्टि की स्थिति के लिए अनिवार्य है, वहा 'नियम' व्यष्टि के जीवन को पवित्र कर बहुत उन्नत कर देते हैं।

'वैदिक आचारशास्त्र एवं मानक अध्याय' में वेद के सब नैतिक तत्त्वो एवं उदात्त प्रार्थनाओं को प्रस्तुत किया गया है। मानव-मात्र आचार एवं नीति सम्बन्धी उन निर्देशों और प्रार्थनाओं का पालन कर सुखी हो सकता है।

'वैदिक समाज-व्यवस्था और मानववाद' नामक अगले अध्याय में हमने बतलाया है कि यद्यपि व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवाद, साम्यवाद, समाजवाद आदि सामाजिक- राजनैतिक व्यवस्थाओं का प्रादुर्भाव भी मानववादी चिन्तनधाराओं से ही हुआ है तथापि ये सब समानता, स्वतन्त्रता और मानव-हित के उद्देश्य को लेकर ही चलते हैं। किन्तु निश्चित दर्शन के अभाव एवं एकांगी होने के कारण ये संगठन मानववाद के उद्देश्य को पूरा करने में सर्वथा असफल रहे है। यही कारण है कि मानव-समानता, मान -स्वतन्त्रता, विश्व-बन्धुत्व एवं विश्वशान्त की रट लगा कर भी ये नेता हिंसा के ताण्डव को रोकने में असफल रहे हैं। वस्तुतः वैदिक अध्यात्मवाद के सबल आधार के बिना वास्तविक मानववाद मृग-मरीचिका ही है। वैदिक वर्णाश्रम-व्यवस्था सब प्रकार के वर्ग-भेदों को समाप्त कर लोक-संग्रह और व्यष्टि की सर्वविध उन्नति के मार्ग खोलती है।

'वेद की मानववादी शासन-व्यवस्था' भी प्रजातन्त्र की पद्धति पर आध्यात्मिक एवं नैतिक आधार तो लिए हुए है तथा सब प्रकार के अन्याय, अत्याचार, शोषण एवं विषमताओं को समाप्त करती है।

अन्त में 'वेद में मानवोपयोगी ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल एवं वाणिज्य' नामक अध्याय में हम देखते हैं कि वेद कोरा दर्शन और थोथा धर्म ही नहीं, अपितु उसमें मानव के कल्याण के लिए अनेक प्रकार के ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, उद्योग-व्यापार का वर्णन हुआ है।

इस प्रकार वैदिक साहित्य मानव की ऐहिक और पारलौकिक उभयविध उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। उसमें किसी वर्ग, जाति व सम्प्रदाय को लक्ष्य करने का विचार नहीं किया गया,

अपितु समस्त मानव जाति को लक्ष्य मानकर व्यष्टि के अभ्युदय और निःश्रेयस् का मार्ग बतलाया गया है। इसमें मानव गौरव की सजग स्थापना होते हुए भी न तो काण्ट की भांति ईश्वर के स्थान पर मनुष्य की पूजा का विधान किया गया और न ही जॉन स्टुअर्ट मिल की तरह मानववाद को उपयोगितावाद से पोषित करने की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है। इसमें भी अज्ञान को अभिशाप मान कर अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने की बार-बार प्रार्थना की गयी है। आडम्बरों और तर्कहीन विश्वासों का विरोध किया गया है। नैतिक आचार-विचार की प्रमुखता मानी गयी है और इस प्रकार इस युग के दार्शनिकों द्वारा कल्पित 'मानववाद' का स्फीत, स्वस्थ एवं मनोरम रूप वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है।

वेद और मानव

वेद अर्थात् ज्ञान। वेद सृष्टि के ज्ञान-विज्ञान के आगार है। वेद संसार की प्राचीनतम ज्ञान-राशि है। वेद से पुरातन साहित्य आज तक विद्वानों को उपलब्ध नहीं हुआ है। सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० मैक्समूलर के शब्दों में—'Rigveda is the oldest book in the library of mankind.' अर्थात्— 'मानव पुस्तकालय की प्राचीनतम पुस्तक वेद है।"

वस्तुतः 'वेद' संतप्त और दुःखी मानव जाति के कल्याण का मार्ग बताने वाला दिव्य ग्रन्थ है। मानव मात्र को वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों का ज्ञान कराकर उसे सुख, शान्ति और आनन्द का सच्चा मार्ग बताना—यही वेदो का पवित्र उद्देश्य है। वस्तुतः वेद मानव सभ्यता का मूलस्रोत है, और भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का प्राण है।

वेदों में मानव जाति के उन्नयन के लिए जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन है, उन्हें धर्म का नाम दिया गया है। जो ज्ञान या कर्म पतन से बचाये, उसका उपदेश दे—वही 'धर्मग्रन्थ' है। वेद के आदेश और उपदेश हमें नीचे गिरने से ही नहीं बचाते, अपितु निरन्तर ऊपर उठने की प्रेरणा भी देते हैं।

यही कारण है कि 'वेद' मानव मात्र को 'अमृत पुत्र' कहकर पुकारता है। वेद कहता है "शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः"—हे अमृत के पुत्रो! सबके सब सुनो।

यह है वेद का मानव जाति के लिये सम्बोधन। सभाओं में भाषण देने से पूर्व जैसे प्रत्येक वक्ता आम तौर पर कहता है—"भाइयों और बहनों!" या "लेडीज एण्ड जेण्टिलमैन!" यह वैसा सम्बोधन नहीं है। न ही इस सम्बोधन में समस्त हिन्दुओं सुनो!" या "भारतवासियो सुनो!" वाली बात है। यह सम्बोधन न अपनी जाति-बिरादरी वालों के लिए है, न हम-मजहब लोगों के लिये है, न ही हम-वतन लोगों के लिये।

आज संसार विभिन्न धर्मों, विभिन्न देशों, विभिन्न गुटों, विभिन्न जातियों और विभिन्न विचार-धाराओं में बंटा हुआ है। परन्तु आश्चर्य है कि वेद की दृष्टि से न कोई ऐतिहासिक सीमा है, न ही भौगोलिक न राजनैतिक सीमा है और न ही साम्प्रदायिक सीमा। ये सब सीमाएं तो मानवकृत हैं, वेद इन सब सीमाओं से ऊपर है। उसके लिए समग्र मनुष्य जाति एक इकाई है।

साथ में विशेषण है "अमृतस्य पुत्राः" अर्थात् सारी मानव जाति अमृत पुत्र है, यह अमरता की सन्तान है—जो अक्षय आनन्द के स्रोत, सच्चिदानन्द स्वरूप, अमृत धाम मोक्ष पद के अधीश्वर परमपिता परमात्मा की संतान है। कोई एक ही अकेला खुदा का बेटा नहीं है—परन्तु वेद की दृष्टि में सभी खुदा के बेटे हैं, उसी परमपिता के पुत्र हैं।

अरे, अमरपिता की सन्तान यह मरणधर्मा मनुष्य! कैसा विचित्र विरोधाभास है? विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी विश्व प्रसिद्ध 'गीताञ्जलि' नामक रचना इसी भाव से आरम्भ की है: Thou hast made me immortal—तूने मुझे अमर बनाया है, परन्तु मैं अमर कहाँ रहा? मैं मृत्यु की शरण में चला गया—आवागमन के चक्कर में फंस गया।

कोई बात नहीं। मैं एक बार एक श्रेणी में फेल हो गया तो कोई चिन्ता नहीं। मेरे पिता ने मुझे स्कूल में फेल होने के लिए नहीं भेजा था। मै अगली बार उत्तीर्ण होकर दिखाऊंगा।

परमपिता ने भी मानव को संसार में अनुत्तीर्ण होने के लिये या आवागमन के चक्कर में फंसने के लिए नहीं भेजा है। वह तो चाहता है कि मेरे सभी पुत्र इन पापयोनि, कर्मयोनि और भोगयोनि रूप नाना योनियों में जन्म-जन्मान्तरों के चक्र से छूटकर वापिस मेरी गोद में आ जायें, मोक्ष प्राप्त करें, अमृत लाभ करें। पिता और पुत्रों का मेल हो जाये।

परन्तु मानव अपनी साधना की कमी के कारण बारम्बार अनुत्तीर्ण हो जाता है वहाँ तक पहुँच नही पाता। हाँ, लगातार प्रयत्न करते रहने पर प्रत्येक बालक जैसे एक दिन खड़ा होना सीख जाता है, वैसे ही एक दिन मानव को भी आवागमन—जन्म-जन्मान्तर के चक्र से छूटना है—शर्त यह है कि वह लगातार प्रयत्न करता रहे। इसी में मानव जीवन का साफल्य है। मोक्ष ही मानव का चरम लक्ष्य है।

समस्त भारतीय साहित्य में मानव जीवन का 'लक्ष्य' मोक्ष जो कहा गया है सो अकारण नहीं है। वेद, उपवेद, वेदांग और उपांग सब में—अरे लौकिक और ललित साहित्य में भी—मानव जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष को ही बताने की प्रवृत्ति वेद की उसी भावना की द्योतक है और कोई लक्ष्य मानव-जीवन का हो ही नहीं सकता। मंजिल निर्दिष्ट हो गयी, वह है : मोक्ष। किन्तु मंजिल तक पहुँचने

का मार्ग बड़ा बीहड़ है। मानव-जीवन भी क्या कम जटिल है ? जन्म से मृत्यु तक रोना ही रोना लगा है।

कुछ शरीर की आवश्यकताएं हैं और कुछ मन व बुद्धि की आवश्यकताएं है, जिनकी पूर्ति के लिए मनुष्य सदा प्रयत्न करता रहता हैं। शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अर्थ चाहिए। रोटी, कपड़ा और मकान तथा जीवन के समस्त सांसारिक पदार्थ इस अर्थ में समा जाते हैं।

मन की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए 'काम' चाहिए—स्त्री-पुरुषों-पौत्रादि गृहस्थी के समस्त बन्धन इसी काम के विस्तार है। बुद्धि के लिए ज्ञान चाहिए— "बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति"—बिना-विज्ञान के बुद्धि की तृप्ति नही होती। आत्मा के लिए 'मोक्ष' चाहिए।

इसीलिए वेद की दृष्टि में मानव जीवन के चार 'पुरुषार्थ' हैं। पुरुषार्थ अर्थात् पुरुष का प्रयोजन - ऐसा प्रयोजन जिसके बिना मानव जीवन चल नही सकता। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये ही चार पुरुषार्थ है। पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा, सब इन चार पुरुषार्थों मे आ जाती हैं। ज्ञान, मान, रति आदि मानव-जीवन की समस्त मूल प्रवृत्तियां, जिन्हे आज का पाश्चात्य-मनोविज्ञान भी अस्वीकार नही कर सकता—वे पुरुषार्थ-चतुष्टय में परिगणित अर्थ और काम में आ जाती हैं। फ्रायड का मनोविज्ञान जिस 'सेक्स' पर इतना जोर देता है क्या वह 'काम' से भिन्न है ? और जिसे मनोवैज्ञानिक विद्वान् 'जीवनेच्छा' कहते हैं वह भी 'अर्थ' से भिन्न नहीं है।

परन्तु पाश्चात्य मनोविज्ञान (Western Psychology) के पीछे चलकर यदि अर्थ और काम को ही सारे जीवन की बागडोर सौप दी जाये—और पुरुषार्थ चतुष्टय में से 'धर्म' और 'मोक्ष' को निकाल दिया जाये—तो मानव जीवन की गाड़ी किस अज्ञात और अथाह गर्त में गिरेगी, इसकी कल्पना असम्भव सी है। यदि इस स्थिति का कुछ थोड़ा-सा आभास पाना हो तो अपने चारों ओर की दुनियां पर क्षण भर के लिए दृष्टिपात कर लीजिये।

यह भ्रष्टाचार, यह चोरबाजारी, यह रिश्वतखोरी, यह युद्धों की तैयारी, शस्त्रास्त्रों का और मानव जाति के विध्वंसक अणुबमों का संग्रह, यह जीवन की अशान्ति, ये नाना आँधियां और नित नयी व्याधियां—ये सब 'अर्थ' और काम' का विस्तार और विलास मात्र हैं।

यदि 'धर्म' और 'मोक्ष' का अंकुश न रहे तो गिरे अर्थ और काम तो 'शिश्नोदरवाद' (भोगवाद) के पर्यायवाची ही हैं। शिश्नोदरवाद आसुरी, अनार्य और अवैदिक संस्कृति है। धर्म से रहित अर्थ और धर्म से रहित 'काम' कभी मंजिल (मोक्ष) तक नहीं पहुँचा सकते, बीच धार में ही डुबोयेंगे। आज के मानव की और आज के संसार की यही स्थिति है। वस्तुतः आज का मानव 'विज्ञान' को जिस गाड़ी

में सफर कर रहा है उसमें सब कुछ है— सिर्फ 'ब्रेक' नहीं है !

इस स्थिति में चारों ओर का अनवरत हाहाकार बीच धार में डूबने वाली मानव जाति का आर्तनाद ही है, और कुछ नहीं। आज डूबता मानव पुकार रहा है—'बचाओ'-'बचाओ'। आज संसार का प्रत्येक कोना शोक, ताप, दुःख, क्लेश और अशान्ति से ग्रस्त है। शान्ति के लिए प्रयत्न करने वाले दुनियां के सब बड़े-बड़े नेताओं और विचारकों का उद्योग वृक्ष के पत्तों पर पानी छिड़कने के समान प्रतीत हो रहा है—जब कि मूल (जड़) सूख रहा है।

यदि सच कहा जाये तो संसार की इस समस्या का समाधान एकमात्र 'वेद' के पास है। 'वेद' के सिवाय अन्य किसी में यह शक्ति नही है जो इस डूबते मानव समाज के जहाज को बचा सके क्योंकि विश्व के सब मत-मतान्तर, धर्म ग्रन्थ, विविध संगठन और विभिन्न विचारधाराएं व्यक्तिगत ईमान पर जोर देते है—धर्म अर्थात् कर्तव्य (Duty) पर नहीं और 'मोक्ष' की कल्पना तो उनके सामने है ही नहीं।

वे जैसे निरुद्देश्य चल रहे हैं—कहाँ जाना है यह पता नही, बस चल रहे हैं—इतना मालूम है।

आत्मजनो ! वैदिक धर्म की दृष्टि से 'अर्थ' और 'काम' हेय नहीं, है—जीवन में उनका भी स्थान है। अरे ! वे अत्यन्त आवश्यक हैं। उनके बिना शरीर और मन की आवश्यकताएं पूरी नही होती। परन्तु वे अर्थ और काम निरंकुश और निरुद्देश्य नहीं है। उनपर धर्म का अंकुश है और 'मोक्ष' उनका उद्देश्य है।

संक्षेप में अर्थ और काम की जोड़ी है परन्तु वह जोड़ी धर्म के अंकुश में रहनी चाहिये अर्थात् धर्म (अर्थ+काम)=मोक्ष। अर्थात् धर्मपूर्वक अर्थ और धर्मपूर्वक काम ही मोक्ष की मंजिल तक पहुँचाने में सहायक हो सकते हैं, धर्म से रहित होकर नहीं।

वेद की दृष्टि से यह है मानव-जीवन का प्रयोजन, मानव जीवन का लक्ष्य और पुरुष का प्रयोजन– पुरुषार्थ। यही है मानव जीवन की परिभाषा। इससे अधिक परिपूर्ण, सर्वग्राह्य और श्रेयस्कार मानव जीवन की और कोई परिभाषा हो नहीं सकती।

आप पूछेंगे 'वेद' में क्या है ? हम कहते हैं कि वेद में इन्ही चारपुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का प्रतिपादन है। धर्म और मोक्ष के साथ अर्थ और काम भी वेद की दृष्टि में हेय या नगण्य नहीं हैं, उनका भी प्रचुर वर्णन है, परन्तु तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' (Enjoy without attachment) कहकर उनपर अंकुश लगा दिया है।

अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए संसार के पदार्थों का ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि पदार्थों के

गुण-दोष की जानकारी के बिना उसका उपयोग सम्भव नहीं। पदार्थों के गुण-दोष का ज्ञान ही आयुर्वेद है– आयु को बढ़ाने वाला ज्ञान है। रसायन, भौतिकी, शरीरशास्त्र, जीव-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, अस्थि-विज्ञान, आकृति-विज्ञान आदि विज्ञान की समस्त शाखाएं इसी 'आयुर्वेद' के अन्तर्गत आ जाती हैं—और आयुर्वेद वेद का उपवेद है।

वेद कहता है कि संसार के पदार्थों के ज्ञान के लिए सृष्टि-उत्पत्ति के नियमों को—जिसे cosmology कहते हैं- एवं सृष्टि के निर्माता परमात्मा को जानना भी परमावश्यक है। जगत् के उस महान् सचालक -ईश्वर के गुणो को जानकर कर्म तथा भोग के बन्धन मे बंधा अल्पज्ञ जीव उससे साक्षात्कार करने और मिलने को आतुर हो उठता है। अष्टाँग योग को साधने पर ही आत्मा और परमात्मा का मेल होता है-- आवागमन का चक्र छूट जाता है—मोक्ष मिल जाता है।

इस प्रकार पुरुषार्थ-चतुष्टय की सम्यक् साधना के लिए वेद से बढ़कर अन्य कोई मार्गदर्शक नही हो सकता। यही 'वेद' का वेदत्व है। यही मानव जाति को उसका उपदेश है— सन्देश है और उसकी उपयोगिता है। यही कारण है कि 'वेद' किसी भी देश और काल की सीमा में नही आता, वह सम्प्रदाय के अतीत है—इतिहास और भूगोल की सीमाएं उसे नही बांधती। वेद का उपदेश और सन्देश किसी जाति विशेष या देश विशेष के लिए नही है—मानव मात्र के लिये है।

जो सार्वकालिक सत्य है, शाश्वत् और सनातन सत्य है, उसके लिए देश और काल की अपेक्षा नही। निश्चय ही मानव जाति का यह वेद रूपी संविधान मानव जाति के उदय के साथ ही प्रारम्भ होना चाहिये। वह राजा कैसा जो बिना किसी संविधान के प्रजा के पालन की बागडोर अपने हाथ मे संभाल ले ? वह निरंकुश और स्वेच्छाचारी तानाशाह हो सकता है, न्यायकारी राजा नही। 'वेद' उसी न्यायकारी राजा (परमपिता) का सृष्टि के आदि मे अपनी प्रजा के लिए दिया संविधान है।

अतः जैसे उस ईश्वर के बनाये सूर्य और चन्द्र, वायु और जल, पृथ्वी और आकाश, बादल और वर्षा तथा वृक्ष और वनस्पति सबके लिए है—उनमें हिन्दू-मुसलमान या यहूदी-ईसाई का भेदभाव नही है—वैसे ही 'वेद' सबके लिये हैं। सूर्य, चन्द्र, जल, पवन, गगन जैसे 'सेक्यूलर' (Secular) है, वैसे ही वेद भी सेक्यूलर है।

इसी लिए वेद ने देश-जाति, नदी-पर्वत, अर्वाचीन प्राचीन की सब सीमाओं और बाधाओं को लांघकर मानव जाति को एक इकाई के रूप में सम्बोधन किया है—"शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः"—सुनो रे अमृत के पुत्रो, समस्त विश्व के नागरिको, सुनो ! सब के सब सुनो !

यही वेद का 'मानववाद' है—यही वेद का मानव धर्म है। यही सच्चा Humanism है।

वेद के इसी दृष्टिकोण को और आदर्श को इस ग्रन्थ में प्रस्तुत करने का लेखक ने विनम्र प्रयास किया है।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक सभी क्षेत्र के लोगों लिये समान रूप से ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी सिद्ध होगी—चाहे वे छात्र हों या प्राध्यापक, विद्वान् हों या व्यापारो, लेखक हों या वक्ता, वेदधर्मी हों या अन्य धर्मावलम्बी, आस्तिक हों या नास्तिक, अन्वेषक हों या पत्रकार, नेता हों या प्रशासक।

ग्रन्थ-लेखक को अपने इस प्रयास में कहाँ तक सफलता मिलती है, इसे वह पाठकों के निर्णय पर छोड़ता है। यदि इसे पढ़कर एकाध पाठक भी सच्चा वेदानुरागी बनेगा तो लेखक अपना पुरुषार्थ सार्थक मानेगा।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं विदुः ॥

सात्विक, राजस और तामस भेद से दान तीन प्रकार का होता है। कर्तव्य बुद्धि से जो दान, काल और पात्र का विचार करके अपना उपकार न करने वाले व्यक्ति को दिया जाता है, उसे सात्विक दान कहा जाता है।

मनः शुद्धयैव शुद्धिः स्याद्देहिनां नात्र संशयः ।
वृथा तद् व्यतिरेकेण कायस्यैव कदर्थनम् ॥

निः सन्देह मन की शुद्धि से ही आत्मा की शुद्धि होती है। मन की शुद्धि के बिना केवल शरीर को कष्ट देना व्यर्थ है।

अग्निदाहादपि विशिष्टं वाक्पारुष्यम् ।

वाणी की कठोरता अग्नि के दाह से भी अधिक कष्ट देती है।

—★—

त्रिविक्रम भट्ट : जीवन और कृतित्त्व

लेखक—डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा, दयानन्द महाविद्यालय गुरुकुल झोरली

प्राचीन भारत के जिन राजवंशों ने अपने अद्भुत कार्यों से अपना नाम अमर किया है उनमें दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट राजवंश का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस वंश के सम्राटों ने जहां भारत के अनेक शासकों को पराजित कर सम्राट शब्द को सार्थक किया वहाँ इन्होंने वास्तुकला के क्षेत्र में भी कैलाश मंदिर जैसी अद्भुत, अनुपम एवं मूर्तिकला की अभूतपूर्व कृति का निर्माण कराया। इन्ही पराक्रमी सम्राटों के काल में साहित्य के क्षेत्र में अनेक ग्रन्थों का सृजन हुआ जो संख्या में कम होते हुए भी अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। राष्ट्रकूट राजवंश जिसने दक्षिण भारत में आठवी शती से लेकर दशम शती तक राज्य किया, इसी काल में त्रिविक्रम भट्ट नामक एक इतिहासकार एवं साहित्यकार का भी प्रादुर्भाव हुआ।

संस्कृत साहित्य के अध्ययन में एक सबसे बड़ी बाधा यह है कि यहाँ एक नामधारी अनेक साहित्यकार हुए है। यही समस्या त्रिविक्रमभट्ट के साथ आती है। संस्कृत में त्रिविक्रम नामधारी लगभग १४ त्रिविक्रम हुए है (देखिये, लेखककृत अंग्रेजी भाषा में लिखित शोध प्रबन्ध त्रिविक्रम भट्ट एण्ड हिज टाइम्स पृष्ठ १–२) अतः इस तथ्य का पता लगाना कि हमारा आलोच्य त्रिविक्रम कौन सा है, एक दुष्कर कार्य है।

त्रिविक्रम भट्ट को सभी संस्कृत विद्वानों ने एक मत से संस्कृत में चम्पू नामक विधा का जनक माना है और उनके नल चम्पू को संस्कृत साहित्य का सर्वप्रथम चम्पू स्वीकार किया है। त्रिविक्रम-भट्ट की इस अमर कृति के अनुसार उनके पितामह का नाम श्रीधर और उनके पिता का नाम देवादित्य था (देखिये नल चम्पू १६) परन्तु नवसारी ताम्रलेख के अनुसार उनके पिता का नाम नेमादित्य था। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके पिता का नाम नेमादित्य ही था, सम्भवतः लिपिकारों ने भूल से नेमादित्य के स्थान पर देवादित्य लिख दिया हैं। (देखिये श्री बलदेव उपाध्याय कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ४१५ की पाद टिप्पणी (Foot note)।

त्रिविक्रम भट्ट का परिवार अपनी विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध है इस परिवार में भास्कर भट्ट गोविन्द, प्रभाकर, माहेश्वर तथा प्रसिद्ध ज्योतिषी एवं गणित भास्कराचार्य जैसे विद्वानों का जन्म हुआ। त्रिविक्रम के अनुसार वे शाण्डिल्य गोत्र के कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे (नलचम्पू पृष्ठ १३) उनके पिता वैदिक साहित्य के विद्वान् थे। त्रिविक्रम के बारे में एक रोचक कथा है। कहते है कि उनके पिता किसी राजा

के दरबार मे प्रधान पंडित के पद पर प्रतिष्ठित थे। एक बार उनके पिता किसी कार्यवश बाहर गये हुए थे कि उनके पिता का विद्वेषी विद्वान् राजदरबार में आया और उसने किसी पंडित से शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की। राजा ने त्रिविक्रम के पिता की अनुपस्थिति मे त्रिविक्रम को ही राजदरबार में आने को कहा। त्रिविक्रम, जो कुछ भी पढ़े लिखे नही थे, राजाज्ञा से बड़े घबराये और उन्होने अपनी कुलदेवी सरस्वती से अपने पिता की प्रतिष्ठा रखने की प्रार्थना की। सरस्वती ने आशीर्वाद दिया कि जब तक तुम्हारे पिता लौट कर नही आते, तब तक मैं तुम्हारे मुख मे निवास करूंगी। देवी भारती के प्रसाद को पाकर त्रिविक्रम राजदबार मे पधारे और उन्होने शास्त्रार्थ मे प्रतिपक्षी पंडित को पराजित कर दिया।

जीवन काल व आश्रयदाता

उनके नवसारी ताम्रलेखों में जिनकी तिथि सन् ९१५ ई० है, के आधार पर हम कह सकते है कि त्रिविक्रम का जन्म सम्भवतः नवी शती के अन्तिम उत्तरार्द्ध मे हुआ होगा। उनके पुत्र भास्कर-भट्ट धारानगरी के प्रसिद्ध परमारवंशी राजा भोज (सन् १०११–५५ ई०) के सभा पंडित थे। अतः हम यह अनुमान कर सकते है कि त्रिविक्रम दशम शती के कम से कम उत्तरार्द्ध के प्रथम अर्धांश तक अवश्य जीवित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि त्रिविक्रम के बड़े भाई ने उन्हें राजदरबार में स्थान दिलाया। सर्वप्रथम उन्होने राष्ट्रकूट सम्राट कृष्ण द्वितीय की सेवा की, तदन्तर वे कृष्ण द्वितीय के पौत्र इन्द्र तृतीय के दरबार मे रहे (देखिये त्रिविक्रमभट्ट एण्ड हिज टाइम्स पृष्ठ १४–१६) अभी तक विद्वानो का यह मत रहा है कि त्रिविक्रम इन्द्र के दरबार मे कवि रूप मे रहते थे। परन्तु हमारा मत है कि राष्ट्रकूट सम्राट इन्द्रतृतीय के महासंधि विग्रहक थे। देखिये लेखककृत शोध प्रबन्ध पृष्ठ १२४) वे इस पद पर ९१५ ई० से ९२८ ई० तक रहे।

निवास स्थान

अपनी अमर कृति नल चम्पू में त्रिविक्रम ने दक्षिण देश की अत्यन्त प्रशंसा की है। उन्होंने दक्षिण दिशा को मस्तक के तिलक के समान, स्त्री एवं पुरुषों को रत्नों का सागर कहा है (नल चम्पू १५४) यही नही उन्होने पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर के लोगों की खिल्ली उड़ाते हुए लिखा है "अहो, नु खल्वमी मत्स्यमांसविरहितमुदीच्यप्रतीच्यप्राच्यजनाः प्रियसक्तवो भोक्तुमेव न जानन्ति।"

अर्थात् ओह ! ये उत्तर पश्चिम और पूर्व के लोग जिन्हें सक्तु (हिन्दी सत्तू) बहुत प्रिय है, मछली माँस से रहित भोजन करना नहीं जानते।"

इसके अतिरिक्त त्रिविक्रम ने केवल दक्षिण के रीति-रिवाजों, खानपान आदि का ही अधिक वर्णन किया है जिससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे दक्षिण के निवासी थे।

उनके निवास स्थान के बारे में हम निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते। नलचम्पू के हिन्दी टीकाकार प्रो० कैलास पति त्रिपाठी के अनुसार पयोष्णी नदी के किनारे पर स्थित कोई स्थान उनका निवास स्थान था। (नलचम्पू, भूमिका पृष्ठ १७) परन्तु नलचम्पू के अध्ययन से लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि उनका जन्म कुण्डिनपुर में हुआ था। देखिये, लेखक द्वारा लिखित शोध प्रबन्ध पृष्ठ ८-६)। कनिंघम, डावसन, हेमचन्द्रराय चौधरी, बैजनाथ पुरी और भगवतशरणउपाध्याय का मत है कि रुक्मिणी एवं दमयन्ती की जन्म स्थली यह कुण्डिनपुर ही है। महाराष्ट्र के अमरावती जिले में स्थित कौण्डिन्यपुर ही प्राचीनकाल का कुण्डिनपुर था। परन्तु हम नल चम्पू के हिन्दी टीकाकार प्रो० कैलास पति त्रिपाठी के इस मत से सहमत है कि महाराष्ट्र में स्थित बुल्डाना जिले मे स्थित लोणार नामक ग्राम ही प्राचीन-काल मे कुण्डिनपुर था (विस्तृत अध्ययन के लिए देखिये लेखक के शोधप्रबन्ध के पृष्ठ ६४–६८)

धर्म

प्रो० कैलास पति त्रिपाठी का मत है कि त्रिविक्रम कार्तिकेय के उपासक थे नलचम्पू भूमिका पृष्ठ १७) परन्तु हम प्रो० त्रिपाठी के उपरोक्त मत से सहमत नही है। यह ठीक है कि त्रिविक्रम सूर्य-नारायण, गणेश एवं कार्तिकेय को बड़ी श्रद्धा से स्मरण करते है परन्तु हमारा मत है कि त्रिविक्रम धार्मिक क्षेत्र मे बड़े उदार थे और वे यद्यपि उपरोक्त देवताओं को बडी श्रद्धा से स्मरण करते है तथापि वे भगवान् शिव के अनन्य भक्त है। नलचम्पू की शिव प्रशंसा मे लिखित मंगलाचरण, सभी पात्रों का शिव भक्त होना तथा उनका संकट के समय शिव का स्मरण करना, नलचम्पू के प्रत्येक उच्छ्वास के अन्तिम श्लोक का "हरचरण सरोज" से अंकित होना उनके शैव होने के प्रबल प्रमाण हैं (विस्तृत अध्ययन के लिये देखिये लेखक के शोध प्रबन्ध के पृष्ठ ११–१४)

पांडित्य

त्रिविक्रम भट्ट के साहित्य के अध्ययन से विदित होता है कि वे वैदिक साहित्य (वेद संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्।) रामायण, महाभारत, षड्दर्शन, पुराणो, संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं, संगीत, ज्योतिष, औषधिशास्त्र आदि के परम ज्ञाता थे।

चरित्र

उनकी अमर कृति नलचम्पू के अध्ययन करने से विदित होता है कि वे बड़े निरभिमानी, विनम्र थे। महाकवि कालिदास की भाँति उन्होने अपनी विनम्रता इन शब्दो में व्यक्त की है—

सोऽहं हंसायितुं मोहाद् वकः पङ्गुर्यथेच्छति ।
मन्दधीस्तद्वदिच्छामि कविवृन्दारकायितुम ।। (नलचम्पू, १ । २१)

अर्थात् जैसे कोई लगड़ा बगुला हंस बनना चाहता है वैसे ही मन्दबुद्धि मै कवियो में मुख्य बनना चाहता हूँ ।

यद्यपि वे विनम्र है परन्तु वे अपना आत्मगौरव और स्वाभिमान का सदैव ध्यान रखते है। यदि कोई उनके स्वाभिमान को ठेस पहुँचाता है तो वे उसकी आलोचना करने से नही चूकते चाहे वह कितना भी महान् क्यो न हो। महामंत्री सालंकायन के चरित्र चित्रण मे उनका यह रूप देखा जा सकता है। वे विद्वानों, देवी-देवताओ, अभ्यागतो तथा गुरुजनो के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करते है। उन्हें असभ्य एवं दुश्चरित्र पुरुषो से अत्यन्त घृणा है वे सच्चरित्र स्त्री-पुरुषों के बड़े प्रशंसक है। कवि सच्चरित्र स्त्रियो के प्रति इतना सम्मान प्रकट करता है। उन्होने अपने ग्रन्थ का नाम दमयन्ती कथा लिखा है। वे पददलित के प्रति अत्यन्त उदार है नौकरी (दासता) के प्रति हमारे आलोच्य कवि को घृणा है (देखिए नलचम्पू पृष्ठ ४५०-५१)। धार्मिक मामलो में त्रिविक्रम भट्ट बड़े उदार है। शृंगार प्रेमी है और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के प्रेमी एवं अधिवक्ता (Advocate) है।

ग्रन्थ

त्रिविक्रम भट्ट ने दो अभिलेख लिखे है। जो बेगुम्रा या नवसारी अभिलेख कहे जाते हैं। ये दोनो ताम्रपट्टिकाओ पर उत्कीर्ण किये गये थे। ये अभिलेख राष्ट्रकूट सम्राट इन्द्र तृतीय के राज्याभिषेक के अवसर पर जो कुरुण्डक नामक ग्राम मे सम्पन्न हुआ, के अवसर पर लिखे गये थे। इन दोनों का रचनाकाल शक् सम्वत् ८३६ फाल्गुन सुदी की सप्तमी (२४-२-६१५ ई०) है (देखिए डा० ए०एस० अलेकरकृत राष्ट्रकूट एण्ड देयर टाइम्स, पृष्ठ १००)। इन दोनो अभिलेखो के प्राप्त होने की कहानी बहुत मनोरंजक है। ६ जुलाई सन् १८८१ को मुल्जी खुशाल, जो बेगुम्रा ग्राम के पटेल थे, का एक नौकर जब खेत में हल चला रहा था तब उसके हल की फाल इन ताम्रपट्टिकाओं से टकराई और जब नौकर ने देखा तो उसने ताम्रपट्टिकाओ को मिट्टी से निकाल कर अपने स्वामी को दे दिया। प्रो० एच.एच. ध्रुव ने सर्वप्रथम इनको सम्पादित करके प्रकाशित किया। ये दोनो अभिलेख ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े उपयोगी है। इन दोनों में राष्ट्रकूट राजवंश की उत्पत्ति तथा दन्तिदुर्ग से लेकर कृष्णद्वितीय तक के कार्य कलापों का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इन अभिलेखों मे राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय के अपने राज्याभिषेक से पूर्व की विजयों का उल्लेख है। (इन विजयो के बारे में लेखक का एक शोधपत्र कलकत्ते से प्रकाशित दि क्वार्टरली रिव्यू ऑफ हिस्टोरिकल स्टडीज, से प्रकाशित होने जा रहा है) इन अभिलेखों

में इन्द्रतृतीय द्वारा ब्राह्मणों को दान मे दिये गए धन तथा ग्रामो का उल्लेख है तथा उस अवसर पर सम्मिलित हुए राज्याधिकारो का उल्लेख है।

त्रिविक्रम की दूसरी कृति है नलचम्पू जिसे दमयंती कथा भी कहा जाता है। यह ग्रन्थ सात उच्छ्वासों में लिखा गया है नलचम्पू को विद्वानों ने एक मत से संस्कृत साहित्य का सर्वप्रथम चम्पू बताते हुए कहा है कि त्रिविक्रम चम्पू नामक गंगा को संस्कृत भूमि पर अवतरित करने वाले भागीरथ थे। यह ग्रन्थ साहित्यिक दृष्टि से बहुत उपादेय है। इस ग्रन्थ मे विपुल सांस्कृतिक सम्पदा छिपी हुई है। प्रस्तुत पंक्तियो के लेखक ने अपने "त्रिविक्रमभट्ट एण्ड हिज टाइम्स" नामक अंग्रेजी भाषा मे लिखित शोध-प्रबन्ध में उपरोक्त अभिलेखो तथा नलचम्पू का राजनीतिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन किया है।

उपरोक्त अभिलेखों तथा नलचम्पू के अतिरिक्त विद्वानों का मत है कि त्रिविक्रमभट्ट ने मदालसा-चम्पू नामक ग्रन्थ की रचना की थी। परन्तु भाषा शैली की विभिन्नता, पांडित्य की अल्पता आदि अनेक विविधताओ के आधार पर लेखक महामहोपाध्याय डॉ० वी० वी० मिराशी के इस मत से सर्वथा सहमत है कि इस मदालसा चम्पू के कर्त्ता हमारे आलोच्य त्रिविक्रमभट्ट से भिन्न कोई अन्य त्रिविक्रम थे। (विस्तृत अध्ययन के लिए देखिये लेखक का शोध प्रबन्ध, पृष्ठ २१-२४)

उपरोक्त वर्णन से विदित होता है कि त्रिविक्रमभट्ट अपने युग की एक महान् विभूति थे। उन्होने अपने युग की प्रत्येक गतिविधि को अपनी कृतियों मे उल्लिखित किया है। उन्होने संस्कृत भाषा में चम्पू नामक विधा को जन्म देकर जहाँ साहित्य जगत् में एक विशेष स्थान बना लिया वहाँ अभिलेख लिखकर वे प्राचीन भारतीय इतिहास की एक महान् विभूति के रूप मे सर्वथा याद किए जायेंगे।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा, तन्द्रा, भयंक्रोध आलस्यं, दीर्घसूत्रिता॥

जो अपना कल्याण चाहता है उसे निन्द्रा, तन्द्रा (निद्रा से पूर्व की अवस्था) भय, क्रोध, आलस्य और देर से काम करने का स्वभाव, इन छः दुर्गुणों को छोड़ देना चाहिए।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामःक्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥

काम, क्रोध, लोभ, नरक के ये तीन द्वार है। ये आत्मा का नाश करने वाले हैं। इसलिए मनुष्य को इन तीनों का त्याग कर देना चाहिए।

यम—नियम

प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार

योग के अङ्गों के अनुष्ठान से अशुद्धि के क्षीण हो जाने पर ज्ञान का प्रकाश विवेकख्याति पर्यन्त बढ़ता ही रहता है।

योग के अङ्गों के अनुष्ठान से चित्त के मल अर्थात् [अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश रूप पाँच पर्वों वाले] अशुद्धिरूप मिथ्याज्ञान का क्षय अर्थात् नाश हो जाता है। उसके नाश होने पर फिर सम्यक् ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए जैसे-जैसे मनुष्य योग के अङ्गों का अनुष्ठान करता जाता है वैसे-वैसे उसके चित्त की अशुद्धि भी क्षीण होती जाती है-वैसे-वैसे उस के चित्त का मल भी धुलता जाता है-वैसे-वैसे उसका चित्त भी निर्मल होता जाता है और जैसे-जैसे उस के चित्त की अशुद्धि क्षीण होती जाती है-जैसे-जैसे उस के चित्त का मल धुलता चलता जाता है-जैसे-जैसे उस का चित्त निर्मल होता चला जाता है, वैसे-वैसे उसके भीतरी ज्ञान की दीप्ति बढ़ती जाती है-ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है और यह ज्ञान की दीप्ति भी तब तक बढ़ती जाती है-यह ज्ञान का प्रकाश भी तब तक बढ़ता जाता है, जब तक कि मनुष्य को प्रकृति और पुरुष के स्वरूप का ज्ञान न हो जाये।

इस प्रकार इन योग के अङ्गों का जो अनुष्ठान है वह जहाँ अशुद्धि के नाश का कारण है-वह जहाँ अशुद्धि के वियोग का कारण है, ऐसे जैसे कि फरसा-कुल्हाड़ा छेद्य-उखाड़ने योग्य लकड़ी के उच्छेद-उखाड़ने का कारण है, वहाँ वह विवेक-ज्ञान-सम्यक् ज्ञान का भी कारण है, ऐसे जैसे कि धर्म का आचरण सुख का कारण है।

योगांग कौन से हैं—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।। यो० द० २.२६ ।।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये उपासनायोग के आठ अङ्ग हैं।

2यद्यपि ये योग के आठों अङ्ग ही विवेकज्ञान के लिये-प्रकृति और पुरुष की पहचान के लिये, आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार के लिये अत्यन्त आवश्यक है। अपने जीवन के परम उद्देश्य की प्राप्ति के लिये इनमें से किसी की भी अवहेलना नहीं की जा सकती, इनमें से किसी का अपलाप नहीं

---

१ योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।। यो० द० २.२८ ।।

२ इन सब अङ्गों का विस्तारपूर्वक वर्णन लेखक की "अष्टाङ्ग योग" नामक पुस्तक मे देखिये।

किया जा सकता, इनमे से किसी की भी लापरवाही नहीं की जा सकती। परन्तु तो भी अनुभवी विद्वान् साधकों का अनुभव रही है कि इन योगाङ्गो मे से जो प्रथम दो अङ्ग यम और नियम है वे योग की रीड़ की हड्डी (Back bone) समझे जाते है। अतः यदि इन दोनो का विशेष रूप से दृढ़तापूर्वक पालन न किया जाये तो योग की गाड़ी चलती नही, इन आधार रूप यम-नियमो को दृढ़ता और लग्न से अपनाया न जाए तो फिर योग-साधना का भवन खड़ा नही हो पाता। इस लिये योग के मार्ग के साधना के पथ के प्रत्येक सच्चे पथिक का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रयत्न पूर्वक जी-जान से इन यम-नियमो का पालन करे, क्योकि जब वह इन का सच्चे हृदय से पालन करने लगेगा तो अगले अङ्गो का पालन करना उसके लिये बड़ा ही सहज हो जायेगा-बड़ा सुगम हो जायेगा।

अब ये 'यम- नियम' क्या है, इस पर विचार करते है

अहिसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ यो० द० २.३० ॥

अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ये यम कहलाते हैं। और

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। यो० द० २.३० ॥

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान, ये नियम कहलाते है।

यम-नियम शब्दों पर विचार

अब इन 'यमो' को यम और 'नियमो' को 'नियम, क्यो कहते है, यह विचारते है -

'यम' शब्द 1 'यम उपरमे" धातु से बनता है। अतः 2'यम' उन्हें कहते है जिनके अनुष्ठान के द्वारा इन्द्रियो को विषयों से पृथक् किया जाता है-हटाया जाता है। इस प्रकार यम Negative हैं- निषेधात्मक है। इसलिये साधक को चाहिए कि वह अपनी उन वृत्ति-प्रवृत्तियो को रोके-हटाए-पृथक् करे जो कि उस के साधना के मार्ग मे बाधक है। अर्थात् उसे चाहिए कि सर्वप्रथम वह अपने घर के कूड़े करकट को निकाल बाहर करे, उसे साफ-सुथरा बनाये। उसे साफसुथरा, स्वच्छ-निर्मल बनाने के लिए उसे चाहिये कि वह अहिसा का पालन करे, अर्थात् वह कभी हिसा न करे, सत्य का पालन करे, अर्थात् वह कभी मिथ्या भाषण न करे; अस्तेय का पालन करे, अर्थात् वह कभी स्तेय-चोरी न करे; ब्रह्मचर्य का पालन करे, संयमी रहे, अर्थात् वह कभी व्यभिचार न करे; अपरिग्रह का पालन करे, अर्थात् वह कभी परिग्रह न करे-वह कभी संग्रह न करे।

---

१ "यम उपरमे" [शान्त होना] भ्वादि परस्मैपद) यच्छति।

२ यम्यन्ते उपरम्यन्ते निवर्त्यते निवर्त्यन्ते हिसादिभ्य इन्द्रियाणि यैस्ते यमाः।

इस प्रकार जब वह साधक मन, वचन और कर्म से हिंसा, असत्य भाषण, चोरी, व्यभिचार और परिग्रह-संग्रह की वृत्ति प्रवृत्तियों से अपने को पृथक् कर लेगा, हटा लेगा, तो इससे उसका हृदय शुद्ध हो जायेगा। अब उसे चाहिये कि वह अपने शुद्ध हुए इस हृदय को नियमो से अलंकृत करे।

अब [1]'नियम' उनको कहते है जिन को यमों के द्वारा अपने साफ-सुथरे, स्वच्छ-निर्मल हृदय मे नियमित किया जाता है। अर्थात् ये नियम (Positive) है, विधेयात्मक है। यमों द्वारा स्वच्छ-निर्मल बने हुए हृदय को इन नियमो से अलंकृत किया जाता है अतः साधकों को चाहिए कि वे नियमो अर्थात् शौच से अपने बाहर- भीतर को-अपने शरीर-मन को शुद्ध करें; सन्तोष-जो कुछ अपने कर्मों के आधार पर प्राप्त हो, उसी मे ही सन्तुष्ट रहने का प्रयास करे, तप-मन इन्द्रियो और शरीर को वश मे रखने के लिये उचित रीति से तप करे ताकि भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, मान-अपमान आदि द्वन्द्वो को सहज ही सहन कर सके। स्वाध्याय-मोक्ष की ओर ले जाने वाले शास्त्रो का स्वाध्याय करे, ओंकार आदि का लक्ष्याभिमुख होकर जप करे, ईश्वर प्रणिधान-अपने सर्व कर्मों को ईश्वरार्पण करें।

"यम"

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ योग-द० २.३० ॥

अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ये पाँच यम है। यम ये इसलिए कहलाते है कि ये साधक को जीवन मे ऊँचा उठने के लिए हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि से उपरत करते है-रोकते है-पृथक् करते है-हटाते है। अब क्रमशः इन का वर्णन किया जाता है-

[2]अहिंसा

अहिसा—सब प्रकार से, सब समयो में, सब प्राणियो के साथ, मन से भी द्रोह छोड़कर-वैर त्याग कर प्रीतिपूर्वक वर्तना अहिसा कहलाती है। इस अहिंसा से अगले जो शेष सत्य-अस्तेय आदि यम और शौच-सन्तोष आदि नियम है वे सब अहिंसामूलक ही है, ये सब उस अहिसा की सिद्धि के लिए ही प्रतिपादित किए जाते है, ये सब उस अहिसा को निर्मल रूप प्रदान करने के लिये ग्रहण

---

१ नियम्यन्ते कर्तव्यतया निश्चीयन्तेऽनीति नियमाः।

२ अनभिद्रोहोऽहिंसा। यो० द० २.३० ॥ द्रोह शब्द "द्रुह जिघांसायाम्" मारने की इच्छा। द्रुह्यति (दिवा०)। द्रोह-जिघांसा-मारने की इच्छा, अभिद्रोहः-चहुँ ओर से सब प्रकार से किसी को मारने-समाप्त करने-नष्ट करने-नेस्तनाबूद करने-तहस-नहस करने की भावना को अभिद्रोह कहते हैं। ऐसी भावना को समाप्त करके जो व्यवहार किया जाता है उसे अनभिद्रोह अर्थात् अहिंसा कहते है।

किये जाते है-जीवन में अपनाये जाते है। जैसा कि पंचशिखाचार्य ने कहा है "यह ब्राह्मण जैसे जैसे बहुत से व्रतों (।सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, शौच, सन्तोष आदि नियमों) को धारण करता जाता है वैसे-वैसे वह प्रमाद से किये हुए हिसा आदि के कारण रूप लोभ, क्रोध, और मोह रूप पापो से निवृत्त हे ता हुआ-पृथक् होता हुआ-बचता हुआ उसी विशुद्धरूप-निर्मलरूप-स्वच्छरूप अहिंसा का पालन करता है।

सत्य

यमो मे यह दूसरा यम है। सत्य जो मनुष्य के मन में है, वही वाणी में हो। मनुष्य ने जैसा देखा हो, जैसा सुना हो, अर्थात् जैसा चक्षु-श्रोत्र आदि इन्द्रियों से साक्षात् किया हो-अनुभव किया हो, जैसा अनुमान किया हो, वैसा ही वाणी से बोले और मन मे धारण करे। दूसरे मनुष्य में जब वह अपना ज्ञान-बोध संक्रान्त करे-दूसरे मनुष्य तक जब वह अपने ज्ञान को पहुँचाए तो उस समय जो वाणी वह बोले उसमे किसी भी प्रकार छल-कपट वा 2धोखा-धडी नही होनी चाहिये, उसमे कोई

१-अब यदि सत्य न बोलकर असत्य बोला जाये, चोरी से बचने के स्थान पर चोरी की जाए, ब्रह्मचर्य का पालन न करके व्यभिचार आदि किया जाये, परिग्रह से-संग्रह से बचने के बजाए परिग्रह किया जाय-संग्रह किया जाये बाहर-भीतर की शुद्धि के स्थान पर बाहरी शरीर वस्त्र और स्थान तथा भीतर के मन, बुद्धि आदि को अशुद्ध-अपवित्र रखा जाये, अपने कर्मों के आधार पर मिले हुए धन-धान्य आदि मे सन्तोष न करके दूसरे के धन-धान्य आदि को लोभ-लालच से देखा जाए वा प्राप्त किया जाये, उद्देश्य की प्राप्ति के लिये तप-त्याग न करके यो ही धीगा-मस्ती से उसको प्राप्त करने का प्रयास किया जाये इत्यादि इन सब कर्मों से दूसरो को दुःख, हानि कष्ट-पीडा आदि पहुँचती है। इसलिए वह अहिंसा मलिन हो जाती है और अगर सत्य-अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि का जी-जान से पालन किया जाये तो फिर उस अहिंसा मे निखार पैदा होता है, अतः इन सब को अहिंसा मूलक कहा गया है।

२-सामान्य जन अपने दैनिक जीवन में अपने घर परिवार मे वा व्यापार-व्यवहार में प्रायः झूठ बोल दिया करते है। जैसे घर मे बच्चा दवाई नही पीता तो उसका पिता कहता है-बेटा! दवाई मीठी है।" बच्चा कहता है "पिता जी दवाई कडवी है।" पिता फिर कहता है, बेटा! पी कर तो देख…।' यह कह कर पिता ने उसे जल्दी से दवाई पिला दी। दवाई वास्तव में थी कड़वी पर झूठ बोलकर मीठी बता कर जल्दी से उसको पिला दी। ऐसे अनेकों झूठ हम आए दिन बोलते रहते हैं, पर साधक ऐसे झूठो से ही नही वरन् हास-परिहासो में भी बोले जाने वाले झूठों से हृदय से नित्य बचते रहने का प्रयास करता है, तभी ही वह अपने आचरण से अपने लक्ष्य के प्रति निरन्तर निकट होता जाता है।

भ्रम-भ्रान्ति उत्पन्न करने वाली बात नहीं होनी चाहिए, उद्देश्य से उल्टी वा निरर्थक बात नही होनी चाहिये। वह वाणी जो बोली जाये वह सब प्राणियों के उपकार के लिए ही प्रवृत्त हुई होनी चाहिए, प्राणियों के उपघात के लिये नही-प्राणियो के हनन के लिये नहीं। यदि इस की कही हुई वाणी प्राणियो के उपघात के लिये-प्राणियो के विनाश के लिए हो तो फिर वह सत्य नही है, वह तो फिर पाप ही है। उस पुण्यरूप प्रतीत होने वाली पापरूप वाणी से तो मनुष्य बहुत बड़े कष्टों को ही प्राप्त होता है। इसलिये मनुष्य को चाहिए कि वह अच्छी प्रकार से परीक्षा करके-अच्छी प्रकार से सोच-विचार करके सब प्राणियों का हित जिस से होता हो-सब प्राणियो का भला जिससे होता हो, ऐसा सत्य बोले। इस प्रकार का सर्वोपकारी-सर्वहितकारी सत्य ही वास्तव में अहिंसा के स्वरूप को निखार कर मनुष्य को सच्चा अहिंसक बना देता है। तभी कहा गया है कि सत्य, अस्तेय आदि यम और शौच-सन्तोष आदि नियम साधक की इसी अहिंसा को ही अवदात रूप प्रदान करने वाले है।

अस्तेय

स्तेय कहते है चोरी को-परस्वापहरण को-दूसरे के धन-धान्य के अपहरण को। शास्त्रवर्जित रीति से बिना पूछे दूसरों के द्रव्यों को-पदार्थों को जो उठा लिया जाता है-अपने काम में ले लिया जाता है, उसे स्तेय करते है, चोरी कहते है। ऐसे उस स्तेय का-ऐसी उस चोरी का जिस मे अभाव हो उसे 'अस्तेय' कहते है और यह अस्तेय यहां तक ही नही है कि हम शास्त्र की आज्ञा के अनुसार किसी दूसरे के धन-धान्य के अपहरण करने से अपने आप को बचा लेते है। व्यास जी लिखते है कि— "हम वास्तव में 'अस्तेय' के सच्चे पालन वाले तब कहला सकेंगे जब कि हम अपने आप को इतना ऊपर उठा लेगे कि हमारे हृदय मे भी दूसरो के धन-धान्यो को-दूसरो की वस्तु, व्यक्ति वा स्थानों को स्पृहापूर्वक देखने-ललचाई दृष्टि से निहारने वा ललचाई दृष्टि से उपभोग करने की भावना भी नहीं रहेगी।

जो भी योगी जन इस 'अस्तेय' का पालन करते है उनका जीवन फिर एक ऐसी खुली पुस्तक बन जाता है कि फिर उसमें कोई दुराव-छिपाव नही रह पाता। हम सामान्य जन यदि कोई खाने की वस्तु बच्चे को अनुकूल नही होती-माफिक नही होती तो हम उसको फिर बच्चों से छिपा कर खाते है। ऐसे ही कोई एक वस्तु किसी एक को देना चाहते है और दूसरो को नही तो फिर जिस को देते है तो वह छिपा कर देते है, कोई खाद्य पदार्थ एक को खिलाना चाहते है दूसरे को नहीं तो फिर जिस को खिलाते है उसे छिपा कर खिलाते है। ऐसे ही हम किसी का हित-उपकार करना चाहते है और किसी के प्रति उदासीन रहना चाहते है तो भी जिनका हित-उपकार करने है वह गुप्त रूप से करते

है। यह सब स्तेय कर्म हम प्रायः सदा करते रहते हैं। पर मार्ग का जो सच्चा अनुयायी है वह यह सब कुछ करने से हृदय से बचने का पूर्ण प्रयास करता है। क्योकि वह इन सब छोटी-छोटी बातों में भी स्तेय चोरी का अनुभव करता है। इस प्रकार जो हृदय से इस 'अस्तेय' को अपना लेता है, उस से फिर किसी को कोई गिला शिकवा नही रहता, फिर किसी को कोई दुःख कष्ट वा हानि नही होती। इस प्रकार का 'अस्तेय' रूप यह यम अहिसा' के रूप को ऐसा निखार देता है कि फिर वह साधक सब के लिये हार्दिक श्रद्धा और सम्मान का पात्र बनता है, अन्यथा घर-परिवार छोड़कर भी-साधु-सन्यासी होकर भी-विरक्त आश्रमो मे रह रह कर भी कई इस स्तेय वृत्ति के कारण किसी के अत्यन्त प्रिय, श्रद्धास्पद और किसी के अत्यन्त अप्रिय, अश्रद्धास्पद बन जाते है, और फिर इन संसारी जनों के तुल्य वे भी उन सब के स्नेह वा घृणा के मान और अपमान के, सत्कार और तिरस्कार के भाजन बन जाते है। अतः सच्चे साधक इस विषय मे सदा सतर्क रहते हैं।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य कहते हैं उपस्थेन्द्रिय के संयम को-गुप्तेन्द्रिय के संयम को। शरीर में जो रज-वीर्य उत्पन्न हो, साधक को चाहिये [योगिन वा] योगी को चाहिये कि वह जी-जान से उसकी रक्षा करे। उसकी रक्षा के लिये वह सतत् अन्य इन्द्रियों पर भी अपना पूर्ण नियन्त्रण करे। अर्थात् वह अपनी आंखों से सदा भद्र देखे, कानों से सदा भद्र सुने, पैरो से सदा भद्र स्थानो पर जाए, हाथो से सदा भद्र करे, वाणी से सदा भद्र बोले, रसना से सदा भद्र पदार्थों का सेवन करे, नासिका से सदा भद्र सूंघे, त्वचा से सदा भद्र स्पर्श करे, मन से सदा भद्र सोचे, बुद्धि से सदा भद्र विचारे। इस प्रकार जब कोई [साधिका वा] साधक [योगिन वा] योगी सदा अपनी चक्षु, श्रोत्र, रसना [=जिह्वा] त्वचा हस्त-पाद मन बुद्धि चित्त आदि इन्द्रियों पर संयम रखेगा और अपना समय सदा स्वाध्याय सत्संग साधना और लोकोपकार में लगायेगा, तो यह सब करते हुए धीरे-धीरे उसमें बड़ी पवित्र एवं ऊँची भावनाएं उत्पन्न होंगी जो योगी को संसार के लिये निर्दोष बना देगी। इस के परिणाम स्वरूप फिर उसका संयम सहज हो जायेगा और उस के भीतर रहने वाले रज-वीर्य की रक्षा भी फिर सहज हो जायेगी। इससे उसकी अहिसा में अत्यन्त निखार पैदा होगा और सबकी उनमें श्रद्धा बढ़ेगी, विश्वास बढ़ेगा। इसके विपरीत यदि कोई साधक-योगी हृदय से ब्रह्मचर्य का पालन न करे अर्थात् वह असंयमी रहे। खाने-पीने, सोने-जागने, हास-परिहास करने आदि में जो चञ्चल चित्त हो, अर्थात् इनके विषय में जो मर्यादाओं का अतिक्रमण करता हो, तो वह फिर चाहे विद्वान् हो चाहे संन्यासी हो, घर-परिवार में रहता हो

(क्रमशः)

श्रद्धानन्दजी की लेखनी से
७५ वर्ष पूर्व गुरुकुल वृत्तान्त

प्रस्तुतकर्ता—जगदीश विद्यालंकार

ऋतु बड़ी मनोहर है। वर्षा ने आनन्द लगा रक्खा है। कुछ दिनों तो रात को वर्षा होती रही और दिन को बराबर खुला रहा, जिस से काम करने मे कोई भी विघ्न नही पडा। गंगा यद्यपि बहुत नही चढी तथापि किनारे का दृश्य बड़ा ही मनोहर है।

मै धन्यवाद पूर्वक सूचित करता हूँ कि धन के लिये अपील बहरे कानो पर नही पड़ी। जहां नित्य दान की आय की औसत १५) वा २०) से नही बढ़ती थी वहां अब नैत्यिक आय ६०) से बढ़ गई है। दिल्ली के आर्य भाई सदैव गुरुकुल को सहायता देने मे आगे रहा करते है। महाशय जानकीनाथ जी एजेन्ट भारत इनश्योरेन्स कम्पनी के उद्योग से महाशय घनश्यामदास बालाबक्स जी साहूकार नवाब का कटरा, चांदनी चौक देहली ने ५५०) ढाईसौ एक कमरे के लिये भेज दिया है और लाला हरसहायमल सुखदेव दास साहूकार कटरा कुतुबुद्दीन, चांदनी चौक, देहली ने भी २५०) ढाई सौ एक कमरे के लिए प्रेषित कर दिया है आशा है ५००) पांचसौ रुपये का दान और भी तीन सप्ताह में देहली के सज्जन भेजेंगे। गुरुकुल के प्रेमियों के लिये देर करने का समय नही है, बड़े पुरुषार्थ से काम करके उसकी उद्देश्यपूर्ति करनी चाहिए।

ब्रह्मचारियों को चल भोज कराने के लिये फल तथा तदर्थ धन इतने महाशय भेजते है कि उन सबका वर्णन प्रत्येक सप्ताह नही हो सकता। महाशय गुरादित्ता स्टेशन मास्टर जी ने भी एक-एक बार आम भेजे। अन्य महाशयों के नाम स्मरण नही रहे। स्वास्थ ठीक रखने के लिये फल भी भोजन का एक अंग है। जिन-जिन प्रान्तो मे जो-जो फल उत्तम हो, यदि प्रेमी महाशय भेज दिया करे तो ब्रह्मचारियों को स्वास्थ रक्षा मे सहायता मिलेगी। जिस स्थान में कोई फल उत्तम उत्पन्न होते हो और वहां के भाई अपनी ओर से अधिक फल न भेज सके तो खरीद कर भेजा करे, मूल्य यहां से दिया जाया करेगा।

गुरुकुल के लिये गत दो तीन वर्षों में इस प्रकार वस्तु दान आता रहा कि किसी विशेष वस्तु के लिये मांगने की आवश्यकता नही हुई। अभी एक मास नही हुआ कि अमृतसर के धार्मिक भाई महाशय गंगाराम राधाकृष्ण क ओर से ७६ कौल दान मे आए थे। अमृतसर से आसनादि भी पहले

आ चुके है। इस समय गुरुकुल में ६० थाली तथा ५० लोटों की और आवश्यकता है। इस वर्ष दुष्काल के कारण बजट में गुंजायश न थी। यदि कोई प्रेमी भाई स्वयं भेज दें तो अगले बजट पर भी बोझ अधिक न पड़े।

अध्यापक सभा का काम बड़ी उत्तमता से चल रहा है। मंगलवार अष्टमी को प्रातः इस सभा का अधिवेशन था। इतिहास की पढ़ाई के एक अंग पर अध्यापक रामदेव बीए० ने बड़ा शिक्षादायक निबन्ध पढ़ा, जिस पर बहुत से अध्यापको ने सम्मतिया दी, जिन में पंडित ब्रजभूषण जी, मेलाराम जी भी सम्मिलित थे। यह देख कर प्रसन्नता हो रही है कि संस्कृत तथा अंग्रेजी वाले अध्यापकों का वे मेल अब गुरुकुल मे दिखाई नहीं देता। अंग्रेजी पढ़ों को भी मानना पड़ा कि पंडित लोग यदि प्रयत्न करे तो सर्वविषयो पर ठीक सम्मति दे सकते हैं। महाशय रामदेव जी के निबन्ध में बहुत सी नई बाते थी, जिस के कारण वह इस योग्य है कि किसी उत्तम पत्र में छपे।

गुरुकुली वाग्वर्धिनी सभा के अधिवेशन भी उसी दिन मध्याह्न को हुआ। ब्रह्मचारी हरिश्चन्द्र ने इस विषय पर व्याख्यान दिया कि भारतवर्ष की एक भाषा संस्कृत होनी चाहिए। पश्चात् बहुत महाशयो ने अपनी-अपनी सम्मतिया दी। इस व्याख्यान को भी लेखबद्ध किया जाये तो छपने के योग्य होगा। अन्य ब्रह्मचारियो के लेख भी उत्तम होते है। "ज्ञ" नाम से जो तीन लेख प्रचारक में निकल चुके है वे नवम श्रेणी के ब्रह्मचारी विश्वनाथ के लिखे हुए है। कुछ और ब्रह्मचारियो के लेख भी बिना नाम के निकलते रहे है। साहित्य परिषद् द्वारा भी ब्रह्मचारियो की योग्यता बढ़ाने का उत्तम प्रबन्ध हो रहा है।

अध्यापक मण्डली ने गत अष्टमी को अगले दो सप्ताह के लिये दर्शको के सम्मानार्थ पंडित ब्रजभूषण जी तथा अध्यापक रामदेव जी को नियत किया है।

मियादी ज्वर (Typhoid fever) को सदैव के लिये निकालने का पूरा यत्न डाक्टरों की सम्मत्यानुसार हो रहा है। डाक्टर सुखदेव जी को भी दिन रात जागने तथा अन्य कष्टों के कारण ज्वर हो गया था। डर था कि कही टाइफाइड ही न हो, किन्तु परमात्मा का धन्यवाद है कि जहां डाक्टर हरप्रसाद से साधुस्वभाव चिकित्सक विद्यमान थे वहां डॉ० सुखदेव जी को भी दो दिनों में ही रोग से मुक्ति मिली और अब वह अपना काम बराबर कर रहे है।

धर्मशाला के पास जहा उत्सव मण्डप बनाया जाता है, सब खेमे लगा दिये गये है और एक बड़ा लम्वा छप्पर डाला गया है। इनमें ब्रह्मचारी रहेगे। उत्सव कैम्प के कुछ कमरे खाली कराके भंडार तथा भोजनशाला बनाए गये है। सारा आश्रम यहां उठा लाए है और विद्यालय का चार्ज अध्यापक

रामदेव को तथा अन्य सर्वचार्ज महाशय केदारनाथ जी को देकर मुख्याष्ठिाता ने भी ब्रह्मचारियो के पास ही डेरा जमाया। इस समय केवल चार ऐसे बीमार है जो टाइफाइड के अन्तिम दिनों का प्रहार सहन कर रहे है। शेष सब अच्छे हो गये। बेचारे चन्द्रकेतु को दूसरा ज्वर हो गया था, बड़ी चिन्ता हो गई थी-अब परमात्मा की कृपा से वह अच्छा है। ब्र० नवीनचन्द्र के बचने की कोई आशा नही रही थी, किन्तु परमात्मा की कृपा से नीरोग हो रहा है, शेष कुछ निर्बल हैं। यह सब पुराने स्थान में जुड़े रहेंगे और आश्रम का सारा मकान शुद्ध किया जावेगा दो मास के पश्चात् नई सफैदी कराने के पश्चात् ब्रह्मचारी आश्रम में आवेगे।

सहायता की कितनी आवश्यकता है वहीं लोग जानते है जो हमारी अवस्था देख गये है। सर्व अध्यापक तथा अथा अन्य कर्मचारी अपने काम में लगे हुए हैं किसी को भी थोड़ा सा अवकाश नही। लगभग २०००) से भी अधिक इस गृह संशोधन में व्यय होगा। बाहरी रक्षा के लिये कम से कम दो योग्य विश्वास पात्र महाशय चाहिएं। मैंने तदर्थ कुछ योग्य भाईयों को लिखा भी, किन्तु उत्तर तक न मिला। परमात्मा पर विश्वास करके गुरुकुल के सेवक काम कर रहे है, वही जन की सहायता करेगा। अब किसी पुरुष विशेष से भी सहायता की आशा न रखते हुए सर्व सेवकों ने गृह संशोधन का काम भी बांट लिया है, परमात्मा स्वयं उनकी सहायता करेगे।

(सद्धर्म प्रचारक, १५ श्रावण, संवत्, १६६५)

गुरुकुल-समाचार

विश्वविद्यालय का वार्षिकोत्सव एवं दीक्षान्त समारोह

सामवेद पारायण यज्ञ--

गतवर्षों की भांति इस वर्ष भी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का वार्षिकोत्सव १० अप्रैल ८३ के सामवेद पारायण यज्ञ से प्रारम्भ हुआ। यज्ञ के ब्रह्मा, आचार्य एवं उप-कुलपति-प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार थे। यज्ञ का संयोजकत्व-डॉ० जयदेव वेदालंकार, दर्शन विभाग ने किया। इस सामवेद पारायण यज्ञ में वेदपाठ डॉ० सत्यव्रत राजेश, डॉ० रामप्रकाश शर्मा, श्री मनुदेव बन्धु तथा श्रीमती सुषमा स्नातिका ने किया। यज्ञ मे गुरुकुल वासियो के अतिरिक्त दिल्ली, पंजाब, हरियाणा तथा उ० प्र० के सैकडो श्रद्धालु भक्तो ने भाग लिया।

सामवेद पारायण यज्ञ के अन्तर्गत प्रो० रामप्रसाद जी वेदालंकार के प्रवचनो के अतिरिक्त स्वामी ओमानन्द जी, स्वामी दीक्षानन्द, एवं ब्र० नरेश आर्य आदि विद्व नो के विद्वतापूर्ण एवं ओजस्वी भाषण हुए।

वेद सम्मेलन—

वार्षिकोत्सव का मुख्य कार्यक्रम १३ अप्रैल ८३ से प्रारम्भ हुआ, इसमें सर्वप्रथम वेद-सम्मेलन का आयोजन किया गया। वेद सम्मेलन के मुख्य अतिथि डॉ० वासुदेव सिंह, मन्त्री उ० प्र० सरकार थे। इस सम्मेलन की अध्यक्षता डॉ० रामनाथ वेदालंकार, पूर्व निदेशक दयानन्द शोधपीठ पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ ने किया। सम्मेलन के प्रारम्भ से गुरुकुल विद्यालय विभाग के ब्रह्मचारियो द्वारा मन्त्रोच्चारण किया गया।

गतवर्ष ४ सितम्बर से ८ सितम्बर ८२ तक सम्पन्न वैदिक शिक्षा राष्ट्रिय कार्यशाला मे वाचन किये गये शोध-पत्रो एवं लेखो से संकलित एव विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित स्मारिका का डॉ० वासुदेवसिंह जी ने विमोचन किया। वेद-सम्मेलन मे अनेक वैदिक विद्वानों के विद्वत्तापूर्ण भाषण हुए। सम्मेलन का संयोजन डॉ० सत्यव्रत राजेश जी ने किया।

राष्ट्ररक्षा सम्मेलन—

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा दिल्ली के प्रधान को लाला रामगोपाल जी शालवाले की अध्यक्षता में राष्ट्र-रक्षा सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन मे आर्य समाज तथा अन्य अनेक राजने-

ताओं ने अपने ओजस्वी भाषणों में राष्ट्र की सुरक्षा के लिए आन्तरिक एवं बाह्य शत्रुओ से सचेत किया। इस सम्मेलन का संयोजन डॉ० विष्णुदत्त राकेश, हिन्दी विभाग ने किया। उत्सव में यज्ञ तथा उक्त सम्मेलनों के अतिरिक्त अन्य अनेक आर्य विद्वानों के भाषण भी हुए।

दीक्षान्त समारोह—

इस वर्ष महामहिम राष्ट्रपति श्री ज्ञानी जैलसिंह विश्वविद्यालय के दीक्षान्त-समारोह के अवसर पर अत्याधिक वर्षा और मौसम खराब होने पर भी दीक्षान्त भाषण देने विश्वविद्यालय में पधारे। इस अवसर पर विश्वविद्यालय भवन में काफी संख्या मे दर्शकगण उपस्थित थे। माननीय राष्ट्रपति जी ने अपने दीक्षान्त भाषण मे नैतिक मूल्यों की रक्षा हेतु गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को आवश्यक बतलाया। अन्त में माननीय राष्ट्रपति जी ने कहा कि यदि मैं गुरुकुल में न आता तो यह मेरे जीवन की बहुत बड़ी भूल होती। दीक्षान्त के अवसर पर अलंकार, बी. एस.-सी., एम.ए. तथा पी एच. डी. के छात्रों को उपाधियो से विभूषित किया गया।

दीक्षान्त समारोह के अवसर पर विश्वविद्यालय के मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने स्नातकों को सम्बोधित करते हुए कहा कि "तुम स्वामी दयानन्द के दिखलाये हुए मार्ग को मत भूलना"। इसी अवसर पर स्वामी दीक्षानन्द, कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी आदि आर्य जगत् के गणमान्य नेताओ ने स्नातकों को आशीर्वाद दिया। दीक्षान्त समारोह का सफल संचालन डा० जबरसिंह सैंगर, कुलसचिव द्वारा किया गया।

वार्षिक परीक्षा—

गुरकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय वार्षिक परीक्षाएं अप्रैल मास के अन्तिम सप्ताह से प्रारम्भ होकर १५ मई ८३ तक सम्पन्न हुईं। इस वर्ष वार्षिक परीक्षा में अनुशासन आदि का विशेष ध्यान रखा गया, जिसके परिणाम स्वरूप परीक्षाएं स्वस्थ एवं शान्त वातावरण में निर्विघ्न सम्पन्न हुईं।

फार्म ४

(नियम ८ देखिये)

१—प्रकाशन स्थान —	गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
२—प्रकाशन अवधि —	मासिक
३ – मुद्रक का नाम—	डॉ० जबरसिंह सेंगर (कुलसचिव)
क्या भारत का नागरिक है ?	भारतीय
(यदि विदेशी है तो मूल देश)	
पताः —	
४—प्रकाशन का नाम—	डॉ० जबरसिंह (कुलसचिव)
क्या भारत का नागरिक है ? भारतीय	
(यदि विदेशी है तो मूल देश)	भारतीय
पताः —	
५ – सम्पादक का नाम—	रामप्रसाद वेदालङ्कार आचार्य एवं उपकुलपति
क्या भारत का नागरिक है ?	
(यदि विदेशी है तो मूल देश)	
पताः—	गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
६ उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हो, हरिद्वार तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मै डॉ० जबरसिंह सेंगर एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये विवरण सत्य है।

प्रकाशक के हस्ताक्षर
डॉ० जबरसिंह सेंगर
(कुलसचिव)

दिनाङ्क…… ………………

गुरुकुल के बढ़ते कदम—

१—छठी पंचवर्षीय योजना में ५० लाख का निर्धारण ।

२—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा २२ लाखरु० का प्रोफेसर्स क्वार्टस के लिये अनुदान ।

३—प्राच्य विद्या संकाय में चार प्रोफेसरों की नियुक्ति के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृति ।

४—विश्वविद्यालय के वर्तमान सत्र से विजिटिंग प्रोफेसर फैलो की योजना प्राम्भ ।

५—मातृ-ग्राम कांगड़ी के विकास के लिये विशेष प्रयत्न ।

६—राष्ट्रीय सेवा योजना का शुभारम्भ ।

७—राष्ट्रीय वैदिक शिक्षा कार्यशाला का अयोजन सितम्बर ८२ में सम्पन्न हुआ ।

८—प्रौढ़ एवं निरन्तर शिक्षा केन्द्र की स्थापना ।

९—संग्रहालय और पुस्तकालय की विशेष प्रगति ।

१०—यौगिक शिक्षा केन्द्र की स्थापना ।

११—देश के विभिन्न सेमनारों में विश्वविद्यालयों के शिक्षकों का सक्रिय योगदान ।

१२—प्रकाशन के क्षेत्र में पाँच महत्वपूर्ण पत्रिकाओं का नियमित रूप से निकलना ।

१३—क्रीड़ा के क्षेत्र में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा ख्याति अर्जित करना ।

जन-सम्पर्क विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

मुद्रक—शक्ति प्रेस, (नहर पुल) कनखल फोन : ७७